महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा

(संसद द्वारा पारित अधिनियम 1997, क्रमांक 3 के अंतर्गत स्थापित केंद्रीय विश्वविद्यालय)

बी.एड.- (द्वितीय सेमेस्टर)

विद्यालय प्रबंधन एवं नेतृत्व

(School Management and Leadership)

दूर शिक्षा निदेशालय

विद्यालय प्रबंधन एवं नेतृत्व

(School Management and Leadership)

अनुक्रमणिका

इकाई 1
विद्यालय प्रबंधन ----------3-10
इकाई 2
विद्यालय प्रबंधन की गतिविधियाँ ----------11-24
इकाई 3
विद्यालय संगठन ----------25-33
इकाई 4
नेतृत्व ----------34-43

इकाई 1. विद्यालय प्रबंधन

संरचना

1.1 शिक्षण उद्देश्य

1.2 प्रस्तावना

1.3 विद्यालय प्रबंधन की अवधारणा एवं क्षेत्र

1.3.1 प्रबन्धन का अर्थ एवं परिभाषा

1.3.2 प्रबन्धन की विशेषताएँ

1.3.3 प्रबन्धन अथवा प्रशासन की परिभाषा

1.3.4 प्रबन्धन के आयाम

1.3.5 प्रबन्धन की अवधारणा

1.3.6 प्रबन्धन का क्षेत्र

1.3.7 भारत में विद्यालय प्रबन्धन

1.4 विद्यालय प्रबंधन के विभिन्न चरण

1.5 प्रबंधन के सिद्धान्त-क्लासिकल,नियो-क्लासिकल एवं आधुनिक

1.6 सारांश

1.7 अपनी प्रगति की जाँच के लिए अपेक्षित उत्तर

1.8 सन्दर्भ पुस्तकें

1.1 शिक्षण उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद,आप निम्नलिखित में सक्षम हो जाएगे -

१. विद्यालय प्रबंधन की अवधारणा एवं क्षेत्र के विषय में अपनी समझ का विकास कर पाएँगे|

२. प्रबंधन के विभिन्न सिद्धान्तों को समझ पाएँगें|

३. प्रबंधन के विभिन्न चरणों के बारें में जान पाएंगे|

1.2 प्रस्तावना

शिक्षा व्यवस्था में विद्यालय का प्रबंधन महत्वपूर्ण होता है | प्रबंधन के अनेक सिद्धान्त हैं जिसके द्वारा प्रबंधन की अवधारणा एवं क्षेत्र को समझा जा सकता है| प्रबंधन के सिद्धान्त के अंतर्गत क्लासिकल, नियो-क्लासिकल, आधुनिक आदि सिद्धान्त आते हैं जिनके बारे में हम इस इकाई में पढ़ेंगे|

1.3 विद्यालय प्रबन्धन की अवधारणा एवं क्षेत्र

विद्यालय प्रबन्धन एक विशेष क्रिया होने के कारण मानव समूह तथा संस्थाओं के संचालन के लिए अर्थात् विद्यालय के कर्मियों तथा विद्यालयी संस्था के संचालन के लिए विद्यालय प्रबन्धन का होना अत्यंत आवश्यक है। शिक्षा के क्षेत्र में प्रबन्धन की प्रक्रिया को प्रशासन (Administration) कहा जाता है।

1.3.1 प्रबन्धन का अर्थ एवं परिभाषा

1) एक संगठन में कार्यरत व्यक्तियों के प्रयासों से निश्चित उद्देश्यों को प्राप्त करने हेतु नियोजन, निर्देशन एवं समन्वित करने को प्रबन्धन कहते हैं|

2) प्रबन्धन पर्यावरण को बनाये रखने तथा उसे बनाने का कार्य करता है, जिसमें व्यक्ति अपने लक्ष्यों को कुशलता एवं प्रभावशाली ढंग से प्राप्त कर सके। -राबर्ट अल्वानेस

3) आर.एस.डेवर तथा जेम्स लुण्डे की परिभाषाओं को एक आकृति की सहायता से भी प्रस्तुत किया गया है।

प्रबन्धन

नियोजन → संगठन → प्रशासन → निर्देशन → नियंत्रण

1.3.2 प्रबन्धन की विशेषताएँ

1) यह उत्पादन की कार्यशील स्थिति है।

2) इसका संबन्ध प्रबन्धक अथवा प्रशासक की नीतियों को क्रियान्वित करने से है।

3) उद्देश्य प्राप्ति के लिए निर्णय लेना इसका प्रमुख कार्य है।

4) यह संगठन का पृथक अंग है जिसमें वे सभी व्यक्ति तथा कार्य आते हैं जो उद्देश्य प्राप्ति के लिए क्रियाशील होते हैं।

1.3.3 प्रबन्धन अथवा प्रशासन की परिभाषा

1) किम्बाल एवं किम्बाल- प्रबन्धन उस कला को कहते हैं जिसके द्वारा किसी उद्योग में मनुष्यों और माल को नियंत्रित करने के लिए लागू आर्थिक सिध्दान्तों को प्रयोग में लाया जाता है।

2) कुन्टज- औपचारिक समूहों में संगठित लोगों से काम कराने की कला का नाम ही प्रबन्धन है।

1.3.4 प्रबंधन के आयाम (Dimensions)

1) विद्यालय प्रबंधन एक समन्वयकारी संसाधन है ।

2) विद्यालय प्रबंधन एक समूहवाचक संज्ञा है।

3) प्रबंधन मूल रूप से क्रिया है।

4) प्रबंधन एक उद्देश्यपूर्ण क्रिया है।

5) प्रबंधन एक सामाजिक क्रिया है।

6) प्रबंधन का दायित्व काम कराना है।

7) विद्यालय प्रबंधन एक अदृश्य कौशल है।

8) प्रबंधन एक सार्वभौमिक क्रिया है।

1.3.5 प्रबन्धन की अवधारणा (Concept of Management)

1970 से विद्यालय प्रबंधन तथा प्रशासन के क्षेत्र में नये विचारों का निर्माण हुआ। जैसे-

1) विद्यालय प्रबन्धन के व्यवहारों तथा सिध्दान्तों में परिवर्तन हो रहे हैं।

2) विद्यालय प्रशासन के जगह पर विद्यालय प्रबन्धन, विद्यालय संगठन जैसे शब्द का प्रयोग किया जाता है।

4) विद्यालय प्रबन्धन ज्ञान की नवीन शाखा के रूप में विकसित हो रहा है।

थिया हेमेन ने प्रबन्धन की अवधारणा को स्पष्ट करते हुए कहा है- प्रबन्ध के तीन अर्थ हैं| यथा प्रबन्धन उच्चस्तरीय प्रबन्धकों का एक समूह है, प्रबन्धन एक विज्ञान है, प्रबन्धन एक सामाजिक क्रिया है| इस अवधारणा की व्याख्या इस प्रकार है -

1) प्रबन्धन उत्पादन का एक आर्थिक संसाधन है| भूमि, श्रम, पूंजी, साहस तथा विनिमय- यह आर्थिक क्रियाओं में प्रमुख घटक हैं। ये सभी घटक प्रबन्धन के अधीन एवं निष्क्रिय हैं।

2) प्रबन्धन एक अधिकार व्यवस्था है। शिक्षा के क्षेत्र में प्रबन्धक तथा प्रबंधित दो वर्ग होते हैं। प्रबन्धक वर्ग के अधिकार होते हैं और वे अपने अधीनस्थों से कार्य लेते हैं। सभी के अपने पदों के अनुरूप अधिकार होते हैं।

3) प्रबन्धन एक लोक समूह है। जैसे कि- विद्यालय में प्रबन्धक, प्रधानाचार्य, अध्यापक, छात्र, अन्य कर्मचारी होते हैं। ये सभी अपने-अपने क्षेत्रों में प्रबन्धन करते हैं।

1.3.6 प्रबन्धन का क्षेत्र (Scope of Management)

विद्यालय प्रबन्धन के क्षेत्र में शिक्षा सम्बन्धी सभी योजनाएँ, नीतियाँ, कार्य-प्रणालियाँ, कर्मचारियों को दिये गये निर्देश, निरीक्षण तथा नियंत्रण, विभिन्न प्रतिवेदन एवं शिक्षा से सम्बन्धित बजट तैयार करना आदि बातें आती हैं। शिक्षा प्रबन्धन के क्षेत्र में एक ओर मानवीय तत्व जैसे छात्र, शिक्षक, निरीक्षक तथा अभिभावक आदि आते हैं, तो दूसरी ओर इसके अन्तर्गत भौतिक तत्व, जैसे-विद्यालय भवन, वित्त सामग्री, उपकरण, फर्निचर आदि आते हैं। शिक्षा की प्रक्रिया से सम्बन्धित सभी बातें विद्यालय प्रबंधन के क्षेत्र के अन्तर्गत आती हैं। वैसे देखा जाए तो विद्यालय प्रबन्धन एक व्यापक प्रक्रिया है। इसके अंतर्गत देश की आवश्यकता, संसाधन, मानव शक्ति नियोजन आदि आते हैं। विद्यालय प्रबन्धन के नौ क्षेत्र हैं:

1) उत्पादक प्रबन्धन- शैक्षिक उपलब्धि इसके अंदर प्रमुख होती है।
2) वित्तीय प्रबन्धन- वित्तीय प्रबन्धन शिक्षा संस्थाओं के संचालन के लिए किया जाता है।
3) विकास प्रबन्धन- विद्यालय की उन्नति के लिए विकास की व्यवस्था की जाती है।
4) वितरण प्रबन्धन- विद्यालयी संसाधनों का वितरण किया जाता है।
5) क्रय प्रबन्धन- सामान क्रय करने का प्रबन्धन विद्यालयों में किया जाता है।
6) परिवहन प्रबन्धन- विद्यालय में छात्र, स्टाफ और सामानों को लाने-ले जोने की व्यवस्था की जाती है।
7) संस्थापक प्रबन्धन- संस्था के भवन, उपकरण, अन्य साधनों का प्रबन्धन किया जाता है।
8) सेवा वर्गीय प्रबन्धन- शिक्षक कर्मचारी आदि की व्यवस्था, पद एवं भूमिका का निर्धारण किया जाता है।
9) कार्यालय प्रबन्धन- प्रत्येक विद्यालय में कार्यालय होता है जिसका प्रबन्धन करना आवश्यक होता है।

1.3.7 भारत में विद्यालय प्रबन्धन (School Management in India)

भारत में विद्यालय प्रबन्धन की विशेषताएँ इस प्रकार हैं:

1) शिक्षा संस्थाओं का संचालन करना ।
2) प्रभावशाली नेतृत्व, प्रबन्धन एवं प्रशासन की आवश्यकता ।
3) मानवीय कौशलों का विकास ।
4) शैक्षिक जटिलताओं का सरलीकरण।
5) शैक्षिक योग्यताओं का विकास ।
6) नवीन आविष्कारों का लाभ उठाना ।
7) शैक्षिक प्रशासन से दोषों को दूर करना ।
8) शैक्षिक संस्थाओं कों आत्मनिर्भर बनाना।
9) सामाजिक गतिशीलता ।

अपनी प्रगति की जाँच करें

विद्यालय प्रबन्धन की अवधारणा एवं क्षेत्र की जानकारी दीजिए|

_____

1.4 विद्यालय प्रबन्धन के विभिन्न चरण

विद्यालय-प्रबन्धन की प्रक्रिया में निम्नलिखित पाँच चरण को ध्यान में रखा जाता है:

1) नियोजन करना: विद्यालय प्रबन्धन में योजना निश्चित करना प्रथम कार्य है। हम कोई कार्य कर रहे हैं तो हमारे उद्देश्य एवं आवश्यकताएँ क्या हैं? इसकी पूर्ति हेतु हमें किस प्रकार ज्ञान उपयुक्त समय-साधना, दूरदर्शिता एवं विशिष्ट योग्यता की अपेक्षा है। योजना का सम्बन्ध मानसिक किया से होता है।

2) व्यवस्था करनाः विद्यालय प्रबन्धन का दूसरा चरण व्यवस्था करना है और इसको कार्यरूप में परिणित करने के लिए सामग्री एवं उपलब्ध साधनों को एकत्रित करना तथा नियम निर्धारित करना आदि बातें आवश्यक हैं।

3) संचालन करनाः इसका सम्बन्ध प्रबन्ध द्वारा एकत्रित की गयी सामग्री का उपयोग एवं कार्य करने वाले व्यक्तियों को कार्य करने के लिए आदेश देने से है। संचालन करने वाला व्यक्ति योग्य, नेतृत्व शक्ति वाला, विवेकपूर्ण तथा चैतन्यशील होना चाहिए।

4) समायोजन करनाः समायोजन का अर्थ है कि जो व्यक्ति किसी कार्य में संलग्न है और वह जिस सामग्री एवं साधनों का प्रयोग कर रहा है उनके पारम्पारिक सम्बन्ध सही ढंग से स्थापित किये जाए।

5) नियंत्रण एवं मूल्यांकनः इसका सम्बन्ध कार्य परिणामों से है और कोई भी क्रिया तब तक सम्पूर्ण नहीं मानी जा सकती जब तक उसके परिणाम का पूर्णरूपेण मूल्यांकन न हो। मूल्यांकन द्वारा ही हमें यह ज्ञान होता है कि हम उद्देश्यों की पूर्ति में कहॉ तक सफल रहे हैं और अपनी असफलताओं तथा कारणों का विश्लेषण करके हम भावी उद्देश्य निर्धारित कर पुनः कार्य संचालित कर सकते हैं।

अपनी प्रगति की जाँच करें

2. विद्यालय प्रबन्धन के विविध चरणों की चर्चा कीजिए|

_____

1.5 प्रबंधन के सिद्धांत - क्लासिकल, नियो-क्लासिकल एवं आधुनिक

प्रबन्धन आज की देन नहीं है। वस्तुतः राज्य की उत्पत्ति के साथ-साथ प्रशासन एवं प्रबंधन का आरम्भ हुआ । राज्य के कुशल एवं सफल संचालन को बनाये रखने के लिए प्रत्येक युग में शिक्षा का आश्रय लिया गया । युग की प्रकृति तथा आवश्यकता के अनुरूप शैक्षिक प्रशासन एवं प्रबंधन की अवधारणा में भी परिवर्तन होते रहे हैं। शैक्षिक प्रबंधन की अवधारणा के विकास को तीन खण्डों में विभाजित किया गया है:

1) प्रबंधन का पारम्परिक युग (Traditional Era of Management)

प्रबंधन का परम्परावादी युग ज्ञान की संरचना पर आधारित रहा है| यह नीति के विकास तथा नीति-क्रियान्वयन तक प्रबंधकों को सीमित करता है। इसे प्रबंधन का क्लासिकल युग भी कहा जा सकता है जिसके अंतर्गत निम्नलिखित विद्वानों द्वारा दिए गए सिद्धान्त आते हैं:

- ✓ **टेलर के विचार**

परम्परावादी विचारधारा के विकास में टेलर, फेयोल तथा वैबर का विशेष योगदान है। लोक प्रबंधन के विद्वानों के मतानुसार नीति निर्धारण तथा क्रियान्वयन अभिकरण पृथक-पृथक होने चाहियें। इससे उत्पादन अथवा निष्पत्ति के लक्ष्यों में वृद्धि होती है। फ्रेडरिक डब्ल्यु. टेलर को इस सम्बन्ध में वैज्ञानिक प्रबन्ध आन्दोलन का जन्मदाता कहा जाता है। उसके अनुसार कर्मचारियों को न तो अधिक और न ही बहुत कम पारिश्रमिक कार्य दिया जाए। वह कुछ लोगों के बहुत जल्दी अमीर बनने के पक्ष में नही था। टेलर के विचार नीचे दिए जा रहे हैं:

1) समय-अध्ययन सिध्दान्त (Time study Principle)

सभी उत्पादन कार्यो का मापन समय द्वारा होना चाहिए। उत्पादन वस्तुओं की गुणवत्ता का ध्यान भी समय-माप में आ जाता है।

2) उत्पादक इकाई का सिध्दान्त (Piece rate Principle)

श्रमिक को उसकी योग्यता तथा क्षमता के अनुसार अधिकतम तथा उच्चतम स्तर प्रदान किया जाना चाहिए। उत्पादक वस्तुओं की मात्र की गुणवत्ता के अनुपात में मजदूरी निर्धारित की जानी चाहिए।

3) नियोजन तथा निष्पत्ति की पृथकता का सिद्धांत (Separation of planning from Performance Principle)

प्रबंधन को कर्मचारियों से व्यवस्था अपने हाथों में लेनी चाहिए।

4) कार्य की वैज्ञानिक विधि का सिध्दांत (Scientific Methods of Work Principle)

व्यवस्थापकों को उत्तम विधियों का निर्धारण करके श्रमिकों को इन विधियों का वैज्ञानिक प्रशिक्षण देना चाहिए।

5) व्यवस्थापक-नियन्त्रण सिध्दांत (Managerial control Principle)

व्यवस्था के वैज्ञानिक सिद्धांतों तथा नियंत्रण के उपायों के क्रियान्वयन हेतु व्यवस्थापकों को प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए।

6) कार्यात्मक व्यवस्था सिध्दांत (Functional Management Principle)

सेना की भॉति कठोर अनुशासन का सिद्धांत भी औद्योगिक संगठन में अपनाना आवश्यक है| इससे विभिन्न क्रियाओं में समन्वय संभव होता है।

- ✓ **मैक्स वैबर के विचार**

मैक्स वैबर ने शैक्षिक प्रबंधन में संगठन की संरचना (Structure of Organization) पर अधिक बल दिया है। उसने प्रशासन में नौकरशाही प्रारूप (Bureaucratic Model) प्रस्तुत किया । उसके अनुसार नौकरशाही प्रारूप उत्तम निष्पत्ति तथा सर्वाधिक लक्ष्य सिद्धि के लिए उत्तम व्यवस्था है। ब्लौ ने वैबर के विचारों की चार विशेषताएँ बताई हैं:

1) अधिकारियों का उच्चोच्चक्रम (Hierarchy of Authority)
2) अव्यक्तिवाद (Impersonality)
3) नियमों की व्यवस्था (A system of rules)
4) विशेषीकरण (Specialization) की व्यवस्था

नौकरशाही व्यवस्था में व्यक्तिगत, सांवेगिक तथा अतार्किक तत्वों एवं कारकों का कोई स्थान नहीं होता है। इस व्यवस्था में श्रम विभाजन पाया जाता है।

- ✓ **हेनरी फेयोल के विचार**

हेनरी फेयोल ने प्रबंधन को अनेक तत्वों की श्रृंखला (Series of Elements) माना है| फेयोल ने प्रशासनिक योग्यता के आधार पर इसे स्वीकार किया है। हेनरी फेयोल ने इन तत्वों का उल्लेख इस प्रकार किया है:

1) नियोजन
2) संगठन
3) कर्मचारी गण
4) निर्देशन
5) समन्वयीकरण
6) प्रतिवेदन, तथा
7) बजट|

उनके मतानुसार उपरोक्त तत्वों को वैज्ञानिक ढंग से एक पूर्व नियोजित प्रक्रिया के अनुसार प्रयोग में लाने से प्रबंधन उत्तम होता है|

पारम्परिक युग और विद्यालय प्रबंधन

टेलर तथा मैक्स वेबर के प्रबंधन के सिद्धांत उद्योग के क्षेत्र में उपयोगी हुए हैं, लेकिन शिक्षा उद्योग नहीं है| यह एक प्रक्रिया है। इस दृष्टि से हेनरी फेयोल के विचार विद्यालय प्रबंधन को अधिक प्रभावित करते हैं। पारम्पारिक युग में विद्यालय प्रबंधन की अवधारणा पर इस प्रकार प्रकाश पड़ा-

1) दूसरे महायुध्द के बाद शैक्षिक प्रबंधन तथा शैक्षिक क्रियान्वयन दो अलग धाराएँ बनीं| ये एक-दूसरे के प्रति उत्तरदायी नहीं थीं।

2) विद्यालयों का स्वरूप गैर-राजनैतिक होना चाहिए।

3) प्रगतिशील देशों में शैक्षिक प्रबंधन टेलर के वैज्ञानिक सिध्दान्तों के आधार पर पुनर्गठित किया गया।

4) विद्यालय प्रबंधकों को यह स्पष्ट होना चाहिए कि उन्हें शिक्षा के क्षेत्र में क्या तथा क्यों करना है? इसका क्या प्रभाव होगा?

5) इस युग में शैक्षिक कार्य तथा कार्य विधियों को विशेष महत्व दिया गया।

6) इस युग में शैक्षिक प्रबंधन से सम्बन्धित विभिन्न अधिकारियों के प्रशिक्षण के कार्यक्रमों का संचालन होने लगा।

फैयोल द्वारा निर्मित तथा कैम्पबेल एवं उसके सहयोगियों द्वारा विकसित व्यवस्था- तत्व सिध्दान्त- को विश्व भर में मान्यता दी गई। शैक्षिक प्रबंधन में विभिन्न तत्वों की पहचान (Identification) एवं विशेषीकरण (Specialization) को महत्व दिया जाने लगा। 1954 में अमेरिका में शैक्षिक प्रबंधन में सहकारी कार्यक्रम इस आधार पर प्रस्तुत किया गया। इस कार्यक्रम में- 1) आवश्यकताओं की परिभाषा तथा समस्याओं की पहचान, 2) सूचना एकत्रीकरण, स्रोतों का निर्धारण तथा परामर्श, 3) नीति निर्धारण, कार्य प्रणाली तथा वैकल्पिक प्रस्ताव, 4) योजना का आरम्भ तथा क्रियान्वयन, एवं 5) प्रगति का मूल्यांकन- जैसे तत्वों को सम्मिलित किया गया। ग्रेक तथा कैम्पबैल ने इसी आधार पर नियोजन, आबंटन, प्रेरणा, समन्वय तथा मूल्यांकन को विकसित किया।

2. प्रबंधन का संक्रमण युग अथवा नव पारंपरिक युग (Neo-classical Era of Management)

इस युग में विद्यालय प्रबंधन में मानवीय सम्बन्धों पर बल दिया गया। 1930 से 1950 तक मानवीय सम्बन्धों को महत्व देने पर अधिक बल दिया गया। इस सन्दर्भ में 1923-26 के मध्य शिकागो में एल्टन मेयो ने एक बिजली कम्पनी के कर्मचारियों का अध्ययन किया। उन्होंने यह निष्कर्ष निकाला कि उत्पादन तथा प्रकाश के मध्य कोई सम्बन्ध नहीं था। उन्होंने यह भी अनुभव किया कि भौतिक कारणों के अतिरिक्त अन्य कारण भी उत्पादन पर प्रभाव डाल रहे थे। 1927 से 1932 के मध्य उन्होंने यह धारणा विकसित की कि कार्य प्रेरणा के लिए मनोवैज्ञानिक तथा सामाजिक कारणों की भूमिका प्रमुख होती है। इसलिए सभी संगठनात्मक समस्यायें मानव सम्बन्धी समस्याएँ हैं | इस युग में शैक्षिक प्रबंधन से सम्बन्धित मुख्य विचार इस प्रकार हैं -

1. प्रबंधन में गतिशील मानव सम्बन्धों के निर्माण तथा विकास को अधिक महत्ता दी जाने लगी|

2. प्रबंधन में व्यक्तियों की मनोवैज्ञानिक तथा सामाजिक आवश्यकताओं की पूर्ति होने लगी। व्यक्ति ही कार्य की प्रेरक शक्ति का संगठनकर्ता माना जाने लगा।

3. प्रबंधन को कर्मचारियों के अनौपचारिक संगठनों के महत्व पर विचार करना चाहिए। अनौपचारिक संगठन अनेक अन्तःक्रियाओं की ओर संकेत करते हैं। ये अन्तःक्रियाएँ उनमें स्वतः होती हैं और वे नियोजित नहीं होती।

4. प्रबंधन तन्त्र ज्ञान, सहभागिता तथा तर्क पर निर्धारित होना चाहिए।

5. विद्यालय प्रबंधन को अपने कर्मचारी मंडल में सामंजस्य एवं नैतिक स्तर का विकास करना चाहिए।

6. विद्यालय प्रबंधन विदयालय कार्यक्रम के संचालन का साधन होना चाहिए न कि साध्य।

7. विद्यालय प्रबंधन को निर्वाचन-प्रक्रिया में विस्तृत सहभागिता करनी चाहिए ।

8. इस युग में जनता द्वारा प्रदत्त अधिकारों के द्वारा विद्यालयों को प्रबंधित करने पर बल दिया गया।

9. विद्यालय प्रबंधन को उन परिस्थितियों का सृजक होना चाहिए।

10. विद्यालय प्रबंधन को सामाजिक विज्ञानों की प्रविधियों का प्रयोग वैध सिध्दान्तों के विकास के लिए करना चाहिए।

11. प्रभावशाली एवं कुशल विद्यालय प्रबंधन के लिए नेतृत्व व्यवहार की व्यक्तिगत तथा संगठनात्मक परिधियों को महत्वपूर्ण समझा गया।

12. इस युग में यह माना गया कि शिक्षा अपने वातावरण से प्रभावित होती है और साथ ही वह अपने परिवेश को भी प्रभावित करती है।

हम यह कह सकते हैं कि संक्रमण काल वस्तुतः परम्परावादी युग की प्रतिक्रिया रहा है। शिक्षा का सम्बन्ध मानव से है| अतः मानव सम्बन्धों के सन्तुलित विकास द्वारा शैक्षिक लक्ष्यों की प्राप्ति इस युग का मुख्य उद्देश्य रहा है।

सामंजस्यपूर्ण मानव सम्बन्धों का निर्माण(Maintaining Harmonious Human Relations)

इस युग का मुख्य आधार सामंजस्यपूर्ण एवं गतिशील मानव सम्बन्धों का निर्माण रहा है। पार्कर एस. फौलेट ने निम्न सिध्दान्तों पर बल दिया:

1) सम्बन्धित उत्तरदायी व्यक्तियों से प्रत्यय सम्बन्ध

2) आरम्भिक अवस्था में समन्वय

3) परिस्थितियों के सभी कारकों के मध्य पारस्परिक समन्वय

4) सतत् प्रक्रिया के रूप में समन्वयीकरण।

फौलेट ने यह भी अनुभव किया कि यदि समन्वय आरम्भिक अवस्था में नीति-निर्माण के समय होता है तो उसके परिणाम अच्छे आते हैं। फौलेट का समग्र समन्वयीकरण का सिध्दान्त पूर्णाकार वाद (Gestalt Psychology) से प्रभावित है। इसमें सत्ता (Entity) को परिस्थितियों के समस्त सन्दर्भों में स्वीकार किया जाता है।

मानव सम्बन्धों की यह धारणा समूह गतिशीलता तथा अन्तःव्यक्ति सम्बन्धों को छोटे समूहों के सन्दर्भ में स्वीकार करता है। संगठन में मानव सम्बन्ध का प्रतिबिम्ब इस प्रकार परिलक्षित होता है:

1) कर्मचारियों की मनो-सामाजिक आवश्यकताओं की पूर्ति इस सन्दर्भ में मनुष्य के व्यवहार तथा सांस्कृतिक परिवेश पर निर्भर करता है।

2) इस धारणा में अनौपचारिक संगठनों का विशेष महत्व है।

फौलेट ने सत्ता के विकास पर भी विचार किया है। फौलेट ने इन तथ्यों पर भी प्रकाश डाला है:

1) सत्ता उत्तरदायित्व स्तर के पदानुक्रम पर आधारित न होकर कार्य पर आधारित होनी चाहिए।

2) वैधानिक सत्ता सभी अनुभवों को संगठित करती है। यह सत्ता समन्वयीकरण से आनी चाहिए।

3) नेता को समूह शक्ति विकसित करनी चाहिए न कि निजी शक्ति।

4) प्रस्तुत परिस्थितियों में नेतृत्व ऐसे व्यक्ति को दिया जाना चाहिए जिसे वांछित ज्ञान हो।

3) प्रबंधन का आधुनिक युग (Modern Era of Management)

आधुनिक युग को व्यवस्था उपागम (System Approach) का युग कहा जाता है। समाजशास्त्र के व्यवस्था सिद्धांतों से शैक्षिक प्रबंधन के सिद्धांतों का विकास हुआ। इस युग में अन्य क्षेत्रों के ज्ञान तथा अवबोध (Knowledge and Understanding) का सामान्य प्रबंधन में उपयोग करने पर विचार हुआ। वर्तमान विद्यालय प्रबंधन पर व्यवस्था सिद्धांत (System Theory) का प्रभाव पड़ रहा है। व्यवस्था-युग के प्रबंधन सम्बन्धी मूल विचार इस प्रकार हैं:

1. सभी संगठन अन्तःक्रियात्मक उपव्यवस्थाओं से जुड़े हैं। प्रत्येक उपव्यवस्था अपने भाग का योगदान करती है।

2. अव्यवस्था, पतन, विघटन आदि विध्वंसात्मक प्रक्रिया पर नियन्त्रण करने के लिए आन्तरिक तथा बाह्य संतुलन संगठनों को करना पड़ता है।

3. संगठनात्मक नियन्त्रण के लिए पृष्ठपोषण का प्रयोग किया जाता है।

उपरोक्त विचारों का विद्यालय प्रबंधन के सिध्दान्त तथा व्यवहार पर प्रभाव पड़ा है। विद्यालय तथा शिक्षा विभागों को एक व्यवस्था के रूप में स्वीकार किया जाने लगा है। शैक्षिक प्रबंधन का अध्ययन करने के लिए इसे सामाजिक प्रक्रिया माना जाने लगा है।

अपनी प्रगति की जाँच करें

3. प्रबंधन के विविध सिद्धान्तों की चर्चा कीजिए|

_____

1.6 सारांश

मानवीय क्रियाओं के संचालन हेतु प्रबंधन की आवश्यकता होती है । प्रबंधन का सम्बन्ध प्रणाली से होता है । प्रबंधन की प्रभावशीलता एवं कार्यक्षमता प्रणाली पर आधारित होती है । मानव द्वारा जिन प्रणालियों का विकास किया गया है, उनमें कोई प्रणाली पूर्ण नहीं हैं| प्रत्येक में सुधार एवं विकास की आवश्यकता है । विद्यालय प्रबंधन का क्षेत्र काफी बड़ा है। प्रबंधन का क्षेत्र काफी विस्तृत है | प्रबंधन के विभिन्न चरण होते हैं। प्रबंधन के क्लासिकल, नियो-क्लासिकल और आधुनिक सिद्धान्त हैं|

1.7 अपनी प्रगति की जाँच के लिए अपेक्षित उत्तर

1. 1.3.5 प्रबन्धन की अवधारणा (Concept of Management) एवं 1.3.6 प्रबंधन का क्षेत्र (Scope of Management)
2. 1.4 विद्यालय प्रबन्धन के विभिन्न चरण
3. 1.5 प्रबंधन के सिद्धांत - क्लासिकल, नियो-क्लासिकल एवं आधुनिक

1.8 सन्दर्भ पुस्तकें

1. कुमार, सतीश- विद्यालय प्रशासन एवं संगठन

2. कुशवाह, पु एवं सक्सेना, क.- शैक्षिक प्रबंधन एवं विद्यालय संगठन

3. तरुण, हरिवंश- मानक शिक्षा दर्शन एवं शैक्षिक समाजशास्त्र

4. भटनागर, सु., वशिष्ठ, क. एवं सिंह, एम.के.- शैक्षिक प्रबंध और शिक्षा की समस्यायें

5. भट्टाचार्य, जे.सी.- अध्यापक शिक्षा

6. माथुर, सा., शर्मा, स. एवं सिन्हा, जे.सी.- शिक्षा के समाजशास्त्र आधार

7. शर्मा, आर.ए.- शिक्षा प्रशासन एवं प्रबंधन

इकाई 2. विद्यालय प्रबंधन की गतिविधियाँ

संरचना

2.1 शिक्षण उद्देश्य

2.2 प्रस्तावना

2.3 वार्षिक कैलेन्डर

2.4 दैनिक कार्यक्रम की योजना

2.5 समय सारणी

2.6 स्टाफ मीटिंग

2.7 छात्रों की समस्याएँ

2.8 विद्यालय संसाधनों का प्रबंधन

2.9 सारांश

2.10 अपनी प्रगति की जाँच के लिए अपेक्षित प्रश्न

2.11 सन्दर्भ पुस्तकें

2.1 शिक्षण उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप निम्नलिखित में सक्षम हो जायेंगे -

1. विद्यालय का वार्षिक कैलेन्डर, दैनिक कार्यक्रम की योजना, समय सारणी, स्टाफ मीटिंग आदि के बारें में जान पाएँगे|

2. विद्यालयों में संसाधनों का प्रबंधन किस तरह से होता है, इसके बारें में जान पाएँगे|

2.2 प्रस्तावना

पहली इकाई में पढ़ाये गए सिद्धान्तों को ध्यान में रखते हुए हम इस इकाई में विद्यालय प्रबंधन में योजना निर्माण, वार्षिक कैलेन्डर, दैनिक कार्यक्रम की योजना आदि के औचित्य को समझेंगे| विद्यालय में समय सारणी का भी महत्व है| विद्यालय में स्टाफ मीटिंग भी अत्यंत आवश्यक होती है तथा उसके साथ-साथ विद्यालयी संसाधनों का उचित प्रबंधन भी विद्यालय के सफल संचालन के लिए उत्तरदायी होता है| वर्तमान इकाई में इन सब विषयों पर प्रकाश डाला जाएगा|

2.3 वार्षिक कैलेन्डर

किसी भी विद्यालय का कार्यकाल सुचारू रूप से चलाने के लिए विद्यालय में होने वाली गतिविधियों का नियोजन करना महत्वपूर्ण होता है । यह नियोजन वार्षिक कैलेन्डर के द्वारा किया जाता है। यह कैलेन्डर सम्पूर्ण विद्यालय के लिए अलग और प्रत्येक अध्यापक अपने विषय के अनुरूप अलग से तैयार करते हैं।

1) विद्यालय का वार्षिक कैलेन्डर- यह विद्यालय के सत्रारम्भ से पूर्व तैयार किया जाता है। यह कैलेन्डर तैयार करते समय साल भर विद्यालय में कितने दिनों तक काम चलने वाला है इसकी गणना की जाती है और इसके बाद ही वार्षिक कैलेन्डर तैयार किया जाता है । इसमें सामान्य तथा स्थानीय छुट्टियों, मासिक, सत्रीय, अर्धवार्षिक एवं वार्षिक रिपोर्ट प्रस्तुत करने की तिथियाँ, बाह्य परीक्षाओं के लिए प्रार्थना पत्र भेजने की तिथि, विद्यालय समितियों, शिक्षक अभिभावक समुदाय तथा अन्य समुदायों के सम्मेलनों की तिथियाँ, विद्यालय टूर्नामेंट एवं शैक्षिक भ्रमण से सम्बंधित तिथियाँ, मासिक और छमाही परीक्षाओं की तिथियों का विवरण दिया जाता है । इसके अलावा वार्षिक कैलेंडर में सत्र शुरू होने से खत्म होने तक की तिथि आदि के बारे में जानकारी दी जाती है । छात्रों की प्रवेश प्रक्रिया, उनकी परीक्षाओं की तिथि आदि के बारे में भी जानकारी दी जाती है ।

2) अध्यापक निर्मित वार्षिक कैलेन्डर- अध्यापक निर्मित वार्षिक कैलेन्डर भी विद्यालय सत्र के प्रारम्भ में तैयार किया जाता है । प्रत्येक अध्यापक अपने विषयों के लिए अलग से वार्षिक कैलेन्डर तैयार करते हैं । वार्षिक कैलेन्डर तैयार करने से पूर्व सामान्य तथा स्थानीय छुट्टियों को देखा जाता है । इसके बाद सालभर में विषय के लिए कितनी कक्षाएँ मिलने वाली हैं, यह देखकर विषय का नियोजन किया जाता है । इसके बाद शैक्षिक और सह-शैक्षिक उपक्रमों के लिए भी कालांश का नियोजन किया जाता है । इसके साथ-साथ सालभर में आने वाली परीक्षाओं का भी नियोजन किया जाता है ।

2.4 दैनिक कार्यक्रम की योजना

विद्यालय में वार्षिक कैलेन्डर के साथ-साथ दैनिक कार्यक्रमों की योजना का नियोजन करना भी महत्वपूर्ण कार्य होता है । विद्यालय में प्रत्येक दिन शैक्षिक और सह-शैक्षिक कार्य चलते हैं, इसलिए इन सबका नियोजन करना आवश्यक होता है। विद्यालय में प्रत्येक दिन की शुरुआत प्रातःकालीन सभा से होती है जिसके अंतर्गत प्रार्थना, सुविचार, अखबार वाचन, किसी विषय पर चर्चा और दिनभर के लिए सूचना आदि का समावेश होता है । यह दैनिक कार्यक्रम की योजना के अंतर्गत आता है । इसके अलावा दिनभर में चलने वाले कालांश, शैक्षिक और सह-शैक्षिक उपक्रम, दिनभर में होने वाली अध्यापक मीटिंग, प्राचार्य मीटिंग आदि का समावेश भी दैनिक कार्यक्रम में किया जाता है ।

अपनी प्रगति की जाँच करें

1. वार्षिक कैलेन्डर और दैनिक कार्यक्रम योजना की चर्चा कीजिए|

2.5 समय सारणी

किसी भी विद्यालय को सुचारू रूप से चलाने के लिए समय सारणी अत्यंत आवश्यक है। समय- सारणी से पाठ्यशाला का समय विभाजन, शिक्षकों का कार्यभार, पाठ्य एवं पाठ्योत्तर प्रवृत्तियों पर दिये जाने वाले समय एवं कार्यपद्धति का अनुमान लगाया जा सकता है। 'समय सारणी विद्यालय को सुचारू और नियमबध्द तरीके से चलाती है।'

परिभाषा

डॉ.एस.एन.मुखर्जी के शब्दों में समय-सारणी चक्र वह दर्पण है जिसमें विद्यालय का समस्त कार्यक्रम प्रतिबिम्बित होता है।

महत्वपूर्ण सिद्धांत (Important Theories of Time Table)

1) शिक्षा विभाग के नियम (Rules of Education Department)

किस शिक्षक को किस विषय के लिए कितनी कालावधि देनी चाहिए, यह समय सारणी में दिया हुआ होना चाहिए।

2) विद्यालय का प्रकार एवं स्तर (Level and Type of School)

विद्यालय का प्रकार जैसे प्राइवेट और सरकारी स्कूल आदि तथा विद्यालय का स्तर जैसे प्राथमिक अथवा माध्यमिक यह देखकर समय सारणी में विविधता होगी।

3) विषय के महत्व के आधार पर समय का विभाजन (Distribution according to subject importance)

कुछ विषय अभ्यासक्रम में अति महत्वपूर्ण होते हैं और कुछ विषय गौण होते हैं|इसीलिए कुछ विषयों को 30-35 मिनट की कालावधि प्रतिदिन देना आवश्यक होता है, तो कुछ विषयों को सप्ताह में 3 कालांश देना ही पर्याप्त होता है। उसके अनुसार समय सारणी में समय का विभाजन किया जाता है।

4) स्थानीय आवश्यकताओं का ध्यान (Consideration of Local Needs)

समय सारणी में स्थानीय आवश्यकताओं का भी ध्यान रखा जाता है। जैसे- कुछ विद्यालयों में विद्यार्थी रेल तथा बस आदि साधनों से आते हैं, तो समय उसी के अनुसार रखा जाता है। श्रमजीवी विद्यालयों में जहाँ दिन में कार्य करने वाले मजदूर रात में पढते हैं, समय सायं 6 बजे से ही रखा जाता है।

5) स्थानीय जलवायु का ध्यान ½ Consideration of Local Climate½

समय सारणी स्थानीय जलवायु को भी ध्यान में रखकर बनायी जाती है। जैसे ठण्डे स्थानों में विद्यालय शीतकाल में बंद रहते हैं और मई-जून में खुले रहते हैं जबकि शेष देश में ग्रीष्म में विद्यालय 1 या 2 माह के लिए बंद रहते हैं।

6) उपलब्ध समय के अनुसार ½According to available time½

उपलब्ध समय के अनुसार हर विषय के लिए कालांश समय सारणी में दिया जाता है। उदाहरणार्थ- दो पाली विद्यालयों में केवल 30-35 मिनट की अवधि ही प्रत्येक कालांश को दी जाती है जबकी दूसरे एक पाली विद्यालयों में 45 मिनट दे सकते हैं। लेकिन दोनों को ही समान रूप से बोर्ड द्वारा प्रदत्त पाठयक्रम को पूरा करना पड़ता है।

7) थकान का ध्यान ½ Consideration of Fatigue½

विद्यार्थी लगातार पढ़ते रहने पर एक अवधि के बाद थक जाते हैं और अध्ययन-अध्यापन प्रक्रिया तभी संभव होती है जब विद्यार्थी थके न हों। इसलिए समय चक्र में ऐसी व्यवस्था हो कि कठिन विषय उस समय दिये जाए जब विद्यार्थी पूर्ण सक्रिय एवं तरोताजा अनुभव कर रहे हों।

8) विविधता ½Diversity½

समय सारणी में विषयों की विविधता होनी चाहिए| इसका मतलब यह है कि विद्यार्थियों को एक ही विषय लगातार पढ़ने को नहीं मिले। अलग-अलग विषयों से विद्यार्थियों की रूचि समग्र अध्ययन दिवस में बनी रहेगी।

9) टकराव ½Conflict½

कभी-कभी एक ही शिक्षक के दो कालांशो या दो शिक्षकों को एक साथ एक ही कालांश में एक ही कक्षा में रख दिया जाता है। ऐसी परिस्थिति में शिक्षक की विद्यार्थियों के समक्ष हास्यास्पद स्थिति हो जाती है। इस स्थिति का समय सारणी बनाते समय ध्यान रखना चाहिए।

10) लचीलापन ½Flexibility½

समय सारणी विद्यालय के समय को नियमबध्द रखने का एक साधन है| इसीलिए विद्यालय उद्देश्य की प्राप्ति के लिए इसे अधिक कठोर न रखकर लचीला रखना आवश्यक है। कभी-कभी किसी विशेष समय पर अनेक कार्यक्रमों का आयोजन किया जाता है, इसीलिए यह सब चीजें ध्यान में रखकर समय सारणी लचीली होनी चाहिए।

11) विद्यालय के संसाधनों का अधिकतम प्रयोग ½Maximum use of School Resources½

विद्यालय के संसाधनों का अधिकतम प्रयोग हो इस बात का ध्यान रखते हुए कितने विद्यार्थियों पर एक शिक्षक की आवश्यकता है, यह निश्चय करने के बाद ही विद्यालयों को शिक्षक उपलब्ध लिए जाने चाहिए।

12) शिक्षकों की रूचि का ध्यान ½Teachers' interest½

समय सारणी में शिक्षकों की विषय के प्रति रूचि का ध्यान रखना भी अत्यंत आवश्यक है क्योंकि शिक्षक को अगर अरूचिकर विषय पढ़ाने को दिया जाए तो वे प्रभावशाली ढंग से नहीं पढ़ा पाएँगे। इसलिए इस बात का भी ध्यान रखना आवश्यक है।

13) विद्यार्थियों की आवश्यकता पूर्ति का ध्यान ½Consideration of Students' Need½ इसके अंतर्गत समय सारणी निर्माणकर्ता को विद्यालयों की विभिन्न आवश्यकताओं तथा विद्यालय के अंतर्गत पानी, लघुशंका निवृत्ति, मध्यान्ह भोजन आदि के लिए उपयुक्त समय का भी ध्यान रखना आवश्यक है।

उत्तम समय सारणी की विशेषताएँ (Characteristics of ideal time table)

1) श्रेष्ठ समय सारणी से विद्यालय में नियमबध्दता व समय की पाबंदी जैसे गुण विकसित होते हैं।

2) समय सारणी में शिक्षण के साथ-साथ अवकाश व मनोरंजन क्रियाओं का उपयुक्त समावेश होता है।

3) मुख्य विषयों तथा सामान्य विषयों को उचित समय पर स्थान दिया जाता है।

4) स्थानीय परिस्थितियों का ध्यान रखा जाता है।

5) छात्र-छात्राओं के लिए वैकल्पिक विषयों के चुनाव में समय सारणी बाधा नहीं बनती।

6) विज्ञान, भूगोल आदि विषयों में प्रयोगशाला की सभी छात्रों के लिए उपलब्धि का ध्यान रखा जाता है।

समय सारणी के दोष (Demerits of Time table)

1) समय सारणी विद्यालयों में इतने कठोर ढंग से लागू की जाती है कि यह शिक्षक और विद्यार्थियों को एक प्रकार से ताले में बंद कर देती है।

2) समय सारणी में ज्यादा-से-ज्यादा समय प्रमुख विषयों में केवल पाठ्य पुनरावृत्तियों पर दिया जाता है। समय सारणी में पाठयोत्तर प्रवृत्तियों का या तो कोई स्थान नहीं होता है और यदि होता है तो उसकी अवधि बहुत कम होती है।

3) विद्यार्थियों को व्यक्तिगत निर्देशन की बात तो संभव ही नहीं हो पाती है।

4) समय सारणी इतनी बंद स्वरूप की होती है कि शिक्षकों को प्रतिभाशाली छात्रों के लिए मार्गदर्शन अथवा मंद बुद्धि वाले छात्रों के व्यक्तिगत रूप से मार्गदर्शन के लिए समय नहीं मिल पाता है।

समय-सारणी का महत्व

1) समय सारणी से विद्यालय में नियमबध्द और व्यवस्थापूर्ण वातावरण बनता है।

2) विद्यार्थियों द्वारा विद्यालयी संसाधनों का अधिकतम उपयोग हो पाता है।

3) विविध विषयों को उपयुक्त समय दे पाना संभव हो पाता है।

4) कार्य का विभाजन शिक्षकों की योग्यतानुसार तथा छात्रों के अनुरूप समय सारणी द्वारा किया जा सकता है।

5) विद्यालयी गतिविधियों को नियमित एवं सुव्यवस्थित करने में योग मिलता है।

6) छात्रों में अच्छी एवं स्वस्थ आदतों का निर्माण होता है।

समय सारणी के प्रकार (Types of time table)

1) समग्र विद्यालय के लिए समय चक्र।

2) शिक्षकवार समय चक्र।

3) कक्षा विशेष के लिए समय चक्र।

4) रिक्त कालांशो के लिए समय चक्र।

5) कुछ विषयों के लिए सम्मिलित कक्षा चक्र।

6) कुछ विषयों में सामूहिक रूप से अध्यापन का समय चक्र।

7) गृह कार्य समय चक्र।

8) पाठ्योत्तर प्रवृत्तियों का समय चक्र।

9) खेलकूद संबंधी समय चक्र।

अपनी प्रगति की जाँच करें

2. समय सारणी के गुण-दोष बताइए|

_____

2.6 स्टाफ मीटिंग

विद्यालय का कार्यभार सुचारू रूप से चलाने के लिए महीने में एक बार स्टाफ मीटिंग होना बहुत महत्वपूर्ण है| इससे प्रधानाध्यापक को विद्यालय के कामकाज के बारें में पता चलता है और इससे वह अपने विद्यालय को अधिक सुचारू रूप से चला सकता है ।

स्टाफ मीटिंग कई प्रकार की होती हैं, जैसे-

1) प्रधानाध्यापक और अध्यापक स्टाफ मीटिंग
2) प्रधानाध्यापक और गैर-शैक्षणिक स्टाफ मीटिंग
3) माता-पिता और अध्यापक मीटिंग
4) विषय विभागाध्यक्ष और उस विषय से सम्बंधित अन्य अध्यापकों की मीटिंग
5) विभिन्न विषयों (अंतर्विषयक) के अध्यापकों की मीटिंग

1) प्रधानाध्यापक और अध्यापक स्टाफ मीटिंग- यह मीटिंग सबसे महत्वपूर्ण होती है । यह मीटिंग प्रधानाध्यापक और अध्यापक के लिए भी महत्वपूर्ण होती है । इस मीटिंग में अनेक बातों पर चर्चा की जाती है । विद्यालय के कार्य, अध्यापक का खुद का व्यक्तिगत कार्य, उनकी समस्याएँ, छात्रों की समस्याएँ, परीक्षाएँ, प्रबंधन सम्बन्धी विभिन्न गतिविधियों आदि के बारे में चर्चा की जाती है।

2) प्रधानाध्यापक और गैर-शैक्षणिक स्टाफ मीटिंग- इस मीटिंग के अंतर्गत प्रधानाध्यापक गैर-शैक्षणिक स्टाफ की समस्याएँ, छात्रों की परीक्षाओं का नियोजन, उनके फॉर्म भरवाना, किसी कार्य की रूपरेखा आदि के बारे में चर्चा की जाती है ।

3) माता-पिता और अध्यापक मीटिंग- यह मीटिंग छात्रों के माता-पिता एवं अध्यापक के बीच होती है । इस मीटिंग में माता-पिता अपने बच्चों की समस्या अध्यापक के सामने रखते हैं और अध्यापक उन पर अपने विचार स्पष्ट करते हैं । इसी तरह अध्यापक छात्रों की प्रगति के बारे में माता-पिता को सूचित करते हैं ।

4) विषय विभागाध्यक्ष और उस विषय से सम्बंधित अन्य अध्यापकों की मीटिंग- इस मीटिंग में विषय के विभाग प्रमुख अपने-अपने विषयों के अध्यापकों के साथ विषय शिक्षण सम्बन्धी क्रियाकलापों एवं योजनाओं के बारे में विस्तृत चर्चा करते हैं ।

5) विभिन्न विषयों (अंतर्विषयक) के अध्यापकों की मीटिंग- हर विषय के अलग-अलग अध्यापक मीटिंग में एक साथ बैठकर विषय के बारे में चर्चा करते हैं और शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया को संवृद्ध करने का प्रारूप तैयार करते हैं।

अपनी प्रगति की जाँच करें

3. स्टाफ मीटिंग का महत्व बताएँ|

_____

2.7 छात्रों की समस्याएँ

छात्र विद्यालय का अविभाज्य अंग होते हैं| छात्रों के बिना विद्यालय का कोई महत्व नहीं होता है| इसलिए छात्रों की समस्याएँ समझना और उसे दूर करने का प्रयास करना- यह अध्यापक और प्रधानाध्यापक का प्रमुख कार्य है क्योंकि अगर छात्र अपनी समस्याओं के साथ विद्यालय में आकर पढाई करेंगे, तो उनका पढ़ने में मन नहीं लगेगा और इससे वह विद्यालय छोड़कर भी जा सकते हैं| इसलिए छात्रों की समस्याओं की ओर ध्यान देना आवश्यक है । विद्यालय के अन्दर तथा कक्षा के अन्दर छात्रों को अलग-अलग तरह की समस्याएँ आतीं हैं| उसी तरह जो छात्र छात्रावास में रहते हैं, उनकी समस्या अलग प्रकार की होती है । विद्यालय में छात्रों को अनेक प्रकार की समस्याएँ आ सकती हैं । इनमें से कई समस्याएँ अनुशासनहीनता के कारण भी आ सकती हैं । अनुशासन से अभिप्राय है कि बच्चे विद्यालय के नियमों, आदर्शों तथा परंपराओं का पालन करें।

विद्यालय में अनुशासनहीनता के कारण

1) योग्य एवं आदर्श शिक्षकों का अभाव।

2) दोषपूर्ण शिक्षा व्यवस्था।

3) आर्थिक कठिनाइयाँ।

4) विद्यार्थियों एवं अध्यापकों में निकट संपर्क का अभाव।

5) सह-शिक्षा।

6) राजनैतिक दल और विद्यार्थी।

7) अनुशासन संबंधी नियमों एवं आदर्श भावना का अभाव।

8) अध्यापकों एवं अभिभावकों में संपर्क का अभाव।

9) अनुशासन संबंधी नियमों एवं आदर्शों का अभाव।

10) अनुशासन के महत्व के प्रति अज्ञानता।

11) विद्यालयों में विद्यार्थियों की अत्यधिक संख्या।

12) विद्यालयों का व्यावसायिक रूप।

13) उचित पथ-प्रदर्शन का अभाव।

14) उद्देश्यहीन शिक्षा।

15) समाज का निम्न कोटि का नैतिक स्तर।

16) उपयुक्त पाठ्यक्रम एवं सहगामी क्रियाओं का अभाव।

17) अन्य कारण।

कक्षा में अनुशासन

छात्रों द्वारा कक्षा में अनुशासनहीनता के कुछ कारण हो सकते हैं, जैसे-

1) बच्चा किसी विशेष घरेलू परिस्थितियों या घटना विशेष के कारण दुःखी हो। इसलिए कक्षा में ध्यानपूर्वक पढ़ने में असमर्थ हो।

2) बहुत से बालक दिए हुए काम को न करने के आदी हो जाते हैं। अतः वे कक्षा में कोई काम करना नहीं चाहते।

3) कुछ छात्र बीमारी के परिणामस्वरूप या अन्य किसी कारण से कक्षा के काम में पीछे रह जाते हैं।

4) अनेक छात्र मंदबुद्धि के होते हैं। वे कक्षा में शिक्षा का पूर्ण लाभ उठाने में असमर्थ होते हैं ।

5) विषयों के चुनाव में भूल होने के कारण भी बहुतसे छात्र कक्षा में ठीक तरह नहीं चल पाते हैं |

6) कक्षा में पढाई सामान्य स्तर के आधार पर होती है। अत्यन्त कुशाग्र बुद्धि वाले छात्र उस शिक्षण में विशेष आनंद प्राप्त नहीं कर पाते हैं ।

7) कुछ छात्र कुसंगत में पड़कर शरारती बच्चों की देखा-देखी अनुशासन भंग करने लगते हैं ।

कक्षा में अनुशासन बनाये रखने के लिए अध्यापक भी अपनी तरफ से कुछ प्रयत्न कर सकते हैं।

1) सराहना- बच्चों द्वारा किये गये कार्य की सराहना करना अत्यंत आवश्यक है। इनसे उनका उत्साह बढ़ता है। आवश्यकतानुसार निंदा एवं स्तुति के प्रयोग से अनुशासन बनाये रखने में भी सहयोग मिलता है।

2) आदर्श- अध्यापक को चाहिए कि मौखिक उपदेश ही न देकर स्वयं भी आदर्श प्रस्तुत करे।

3) संकेत- बच्चों में संकेत तथा सुझाव ग्रहण करने की शक्ति बड़ी प्रबल होती है। अतः बच्चों को आदेश देने के बजाय उन्हें सीधे संकेत तथा इशारे से काम लेना अच्छा होता है।

4) दण्ड का भय- बच्चों को बार-बार दण्ड का भय दिखाना अच्छा नहीं होता है। अतः अध्यापक को चाहिए कि जब दण्ड देने को कहे, तो अवश्य दण्ड देना चाहिए।

5) परिवर्तन- बच्चे कक्षा में एक समान कार्य कर करके उब जाते हैं । इसलिए कक्षा में परिवर्तन करके विषय को मनोरंजक बना लेना चाहिए।

अनुशासनहीनता दूर करने के उपाय

1) अपराधी छात्र की अनुशासनहीनता की समस्या को मनोवैज्ञानिक ढंग से सुलझाना चाहिए।

2) प्रशिक्षित तथा अनुभवी शिक्षकों की नियुक्ति करनी चाहिए।

3) अध्यापकों की आर्थिक स्थिति सुधारने के लिए उनका वेतन मान ऊँचा उठाना चाहिए।

4) छात्रों के अभिभावकों से उचित संपर्क बढ़ा कर उनके अनुभवों का आदर करते हुए उनमें विद्यालयों के कार्यो के प्रति रूचि उत्पन्न करनी चाहिए।

5) छात्रों में स्वानुशासन उत्पन्न करने के लिए उन्हें उत्तरदायित्व सौंपना चाहिए।

6) प्रधानाध्यापक को विद्यालय के प्रबंधन में शिथिलता नहीं आने देनी चाहिए।

7) छात्रों को रूचिकर कार्यों में व्यस्त रखने के लिए विद्यालय में विविध सहगामी क्रियाओं ‘Cocurricular Activities’ का संचालन नियमित तथा नियमों के आधार पर करना चाहिए।

8) अपराधी प्रवृत्ति के छात्रों की समस्याओं का मनोवैज्ञानिक ढंग से समाधान करना चाहिए।

9) विद्यालय को विविध पत्र-पत्रिकाएँ मंगवानी चाहिए और वाचनालय के नियमों का पालन अवश्य होना चाहिए।

10) प्रधानाध्यापक एवं अध्यापकों का व्यवहार छात्रों के प्रति निष्पक्ष एवं विवेकपूर्ण होना चाहिए।

11) बच्चों को प्यार, प्रोत्साहन एवं प्रसन्नता से समझाकर सुधारने का प्रयास करना चाहिए।

12) विद्यालयों के छात्रों में नेतृत्वगुण विकसित करने चाहिए।

13) अध्यापक के आदेश बुलन्द आवाज में हों| इसका मतलब उनके आदेश स्पष्ट एवं उद्देश्यपूर्ण हों।

14) निर्देश व आदेश देते समय अध्यापक को संकेत से भी काम लेना चाहिए।

15) अनुशासन प्राप्ति के लिए भय का प्रयोग कम करना चाहिए।

16) छात्रों में अनुशासन स्थापित करने के लिए उन पर विश्वास करना चाहिए।

17) पुरस्कार देने से भी अनुशासन पर उत्तम प्रभाव पड़ता है।

18) बच्चों की उचित प्रशंसा भी कभी-कभी वरदान सिद्ध होती है।

विद्यालय मॉनिटरिंग

कई सालों से विद्यालय मोनिटरिंग के लिए नए-नए तरीके अपनाये जा रहे हैं | हर राज्य में, हर जिले में, शासन की तरफ से विद्यालय मॉनिटरिंग के अलग-अलग तरीके अपनाये जाते हैं और उसी के अनुसार यह कार्यक्रम चलता है | विद्यालय की व्यवस्था किस तरह से चल रही है ? विद्यालय में कौन-कौन सी भौतिक सुविधाएँ हैं? विद्यालयों में विद्यार्थियों की उपस्थिति, अध्यापकों की उपस्थिति, विद्यार्थियों का अध्ययन में प्रदर्शन, अध्यापकों का अध्यापन में प्रदर्शन इन सबकी जानकारी के लिए विद्यालय में मॉनिटरिंग होना आवश्यक होता है| इसके लिए अधिकृत ऑफिसर विद्यालयों में दौरा करके विद्यालय की जानकारी इकट्ठा करते हैं | मॉनिटरिंग ऑफिसर हर महीने विद्यालयों में दौरा करके यह पता लगाते हैं कि विद्यालय की क्या अवस्था है? विद्यालय में किन-किन व्यवस्थाओं की आवश्यकता है? इन सबके बारे में जानकारी इकट्ठा करते हैं | कोई शैक्षणिक अधिकारी ऑफिसर की भूमिका निभाते हैं | वह हर महीने यह जानकारी शिक्षा विभाग के सचिव के पास पहुँचाते हैं | मॉनिटरिंग का एक फॉर्मेट भी तय किया हुआ होता है| उसी के अनुसार सभी विद्यालयों में मॉनिटरिंग का काम होता है| उस फॉर्मेट के अनुसार विद्यालय से सम्बंधित जानकारी उसमें भरकर प्रस्तुत की जाती है|

अपनी प्रगति की जाँच करें

4. विद्यार्थियों की समस्याओं के बारे में चर्चा कीजिए|

_____

2.8 विद्यालय संसाधनों का प्रबंधन

विद्यालय परिसर का प्रबंधन

'विद्यालय परिसर' शब्द में विद्यालय की सीमा में स्थित भवन, खेल का मैदान, फर्नीचर, उपकरण, साज-सज्जा आदि सम्मिलित हैं।

विद्यालय परिसर में निम्नलिखित बातों की व्यवस्था होनी चाहिए:

1) विद्यालय के लिए उपयुक्त भूमि तथा स्थल
2) जल, प्रकाश, जल निकास आदि की सुविधाएँ
3) विद्यालय भवन में कक्षाओं सहित अन्य कक्षों का निर्माण
4) खेल का मैदान
5) शौचालय एवं मूत्रालय
6) विद्यालय परिसर का सौन्दर्यीकरण

1) विद्यालय भवन

विद्यालय बच्चों का घर है। वह ज्यादा-से-ज्यादा समय विद्यालयों में रहते हैं| इसलिए घर पर जिस प्रकार की सभी सुविधाएँ बच्चों को प्राप्त होती हैं, जो उसके विकास के लिए आवश्यक हैं, उसी प्रकार की सुविधाएँ विद्यालयों में होना आवश्यक है।

विद्यालय भवन निर्माण के प्रमुख प्रकार निम्निलिखित हैं:

1) E प्रकार का भवन।
2) H प्रकार का भवन।
3) U प्रकार का भवन।
4) T प्रकार का भवन।
5) L प्रकार का भवन।
6) I प्रकार का भवन।
7) R प्रकार का भवन।

विद्यालय भवन की योजना का चयन करते समय निम्न तथ्यों को ध्यान में रखा जाना चाहिए:

1) छात्रों की संख्या।
2) भवन निर्माण क्षेत्र का स्थल।
3) स्थिति।
4) भावी विस्तार की सम्भावनायें।
5) विद्यालय भवन के उद्देश्य।

विद्यालय भवन में निम्न भवनों का होना आवश्यक है:

1) मुख्यशाला भवन ¼Main Building½

इसमें आचार्य कक्ष, कार्यालय, आगन्तुक या अतिथि कक्ष, अध्यापक कक्ष, रिकार्ड रूम, निर्देशन तथा परामर्श कक्ष, परीक्षा कक्ष, लड़के-लड़कियों के लिए पृथक विश्राम कक्ष एवं शिक्षण कक्षों का होना आवश्यक है। शौचालय, खेल कक्ष, कला भवन, व्याख्यान कक्ष, प्रयोगशाला, विशेष कक्ष भी होने चाहिए।

2) पुस्तकालय तथा वाचनालय
3) छात्रावास

4) खेल का मैदान- हॉकी, फुटबॉल, वॉलीबाल, क्रिकेट, बास्केटबॉल, टेनिस आदि खेलने के लिए

5) उद्यान, बगीचा, लॉन आदि

6) कृषि फार्म

7) स्टाफ क्वाटर्स-प्रधानाचार्य, शिक्षकों, कार्यालय के कर्मचारियों तथा सहायक कर्मचारियों के लिए

8) रंगशाला, जलाशय, गैस प्लान्ट

9) कार्यशाला आदि|

2) विद्यालय के साधन (School Equipments)

विद्यालय में ऐसे अनेक साधन होते हैं जो अध्ययन-अध्यापन प्रक्रिया में महत्वपूर्ण होते हैं। ये साधन निम्न हैं-

1) फर्नीचर- विद्यालय में सबसे महत्वपूर्ण फर्नीचर है, जैसे- छात्रों के बैठने के डेस्क एवं कुर्सियाँ। रायबर्न के अनुसार- एकहरी डेस्क दोहरी डेस्कों से अच्छी होती हैं। कभी-कभी लंबी डेस्कों पर अलग स्टूल डालकर बैठने का प्रबंध किया जाता है। एकहरी डेस्क से बच्चे का कार्य सरल हो जाता है। डेस्क पर भीड़ नहीं होती है। स्वास्थ्य रक्षा के दृष्टिकोण से भी यह ज्यादा अच्छी होती है। फर्नीचर के मामले में इंग्लैड के बोर्ड ऑफ़ एजुकेशन ने निम्न प्रकार के सुझाव दिए हैं:

1) आसन तथा डेस्क बच्चों की आयु के अनुसार होने चाहिए और उनको खिड़की वाली दीवार से सीधे की ओर लगाना चाहिए।

2) छात्रों को 18 इंच जगह दोनों ओर से मिलनी चाहिए।

3) डेस्क 12 इंच से अधिक चौड़े न हों।

4) लंबे डेस्क इस प्रकार लगाये जाए जिनमें से अध्यापक गुजर सकें।

5) कुर्सी पर बैठते समय छात्र के घुटनों पर जोर न पड़े| घुटने के अंदर के कोने की जगह खाली हो, जंघाओ के ऊपर भी जगह खाली बचे| डेस्क का पिछला भाग, कुर्सी के अगले किनारे को ढँक ले, कुर्सी की कमर, कमर से नीचे हो तथा डेस्क कुहनी से ऊँचा हो जिससे लिखते समय सरलता हो।

2) श्यामपट्ट (Black Board)- श्यामपट्ट का विद्यालयों में दो प्रकार का प्रयोग होता है:

1) दीवारी श्यामपट्ट

2) लकड़ी का श्यामपट्ट

रायबर्न के अनुसार- अधिकांश कामों के लिए तख्ते वाला श्यामपट्ट ज्यादा अच्छा होता है। आगे और पीछे दोनों तरफ से उसका प्रयोग किया जा सकता है और जब अध्यापक उसके निचले भाग का प्रयोग करना चाहते हैं, तो वह ऊँचा उठाया जा सकता है और इस प्रकार निचला भाग कमरे के हर भाग से देखा जा सकता है। बहुधा दीवार के श्यामपट्ट होते हैं जिससे बाहर कक्षाएँ लगाना नितान्त असंभव है। जब कभी श्यामपट्ट बहुत ज्यादा चमकदार हो जाए, तो उसके ऊपर रंग चढा देना चाहिए।

3) कक्षाओं के लिए कक्ष- यह आयताकृत होनी चाहिए। विद्यार्थी संख्या ध्यान में रखकर कक्षाएँ बनानी चाहिए। कक्षा में पर्याप्त मात्रा में सूर्य का प्रकाश आने की सुविधा होनी चाहिए।

4. अलमारियाँ- अलमारियाँ दो प्रकार की होती हैं:

i. दीवार में बनी हुई

ii. लकड़ी अथवा धातु की।

प्रत्येक कक्षा में एक या दो अलमारियाँ होनी चाहिए। सबसे सस्ती अलमारियाँ वे पड़ती हैं जो भवन निर्माण के समय दीवार में बना दी जाती हैं। अलमारी के अंदर रखी हुई सभी चीजों को दीमक से नष्ट होने से बचाने के लिए सावधान रहना पड़ता है। यदि संभव हो तो कमरे में शब्दकोषों, विद्याचक्र-कोषों (Encyclopedia), चित्र-पुस्तकों और एटलसों आदि के रखने के लिए खुली हुई अलमारियाँ होनी चाहिए। विज्ञान कक्ष में बहुतसी अलमारियाँ होती हैं। कमरे के दोनों ओर लकडी की एक अलमारी होनी चाहिए

जो फर्श से लगभग आठ फीट की दूरी पर हो, जिसमें हुक या कीलें लगी हों। इसमें मानचित्र, चार्ट चित्र अथवा अन्य उपयोगी वस्तुएँ टांगी जा सकती हैं।

4) अन्य- इसके अतिरिक्त विद्यालय में जल, शौचालय एवं मूत्रालय की व्यवस्था भी आवश्यक है। इसके लिए पर्याप्त प्रबंध होना आवश्यक है।

सामान्यतः यह पाया जाता है कि विद्यालय भवनों की स्थिति ठीक नहीं है (असर रिपोर्ट, २०१४)। माध्यमिक विद्यालयों एवं छोटे प्राथमिक विद्यालयों में सुविधाओं का अभाव है। इन विद्यालयों में मरम्मत एवं सुधार की आवश्यकता है।

अपनी प्रगति की जाँच करें

5. विद्यालय भवन में किन-किन भवनों का होना आवश्यक है? चर्चा कीजिए|

_____

3) पुस्तकालय (Library)

विद्यालय में पुस्तकालय का महत्वपूर्ण स्थान है। कार्लाइल- पुस्तकालय पुस्तकों का संकल नहीं, आज के युग का वास्तविक विद्यालय है। पुस्तकालय विद्यालय की एक धुरी है जिसके चारों ओर विद्यालय का संपूर्ण जीवन चक्कर लगाता है। पुस्तकालय विद्यालय की आत्मा है। कोई भी विद्यालय पुस्तकालय के बिना अधूरा है।

पुस्तकालय की आवश्यकता

विद्यालय में पुस्तकालय निम्न कारणों से आवश्यक है:

1) स्वाध्याय- विद्यार्थियों को स्वाध्याय हेतु पुस्तकालय की आवश्यकता होती है। स्वाध्याय में रूचि उत्पन्न करके उसे जीवन का स्थायी अंग बनाने, विद्यालय की प्रयोजना प्रणाली को सफलतापूर्वक क्रियान्वित करने, पाठ्यक्रम सहगामी-क्रियाओं को प्रभावशाली ढंग से पूरा करने के लिए एक संपन्न पुस्तकालय की आवश्यकता होती है।

2) शैक्षिक दक्षता।

3) स्वतंत्र चिंतन।

4) शैक्षिक लक्ष्य।

5) अतिरिक्त अध्ययन।

6) सामान्य ज्ञान।

7) विभिन्न प्रकार की पुस्तकें।

8) सामाजिक सांस्कृतिक जानकारी।

9) मौन अभ्यास।

10) वैयक्तिक अध्ययन।

11) समय का सदुपयोग।

12) पाठ्येत्तर अध्ययन।

13) प्रगतिशील शिक्षण-विधियों में सहायक।

पुस्तकालय के कार्य (Functions of Library)

1) पुस्तकें शिक्षकों के अनुदेशन कार्य में सहयोग देती हैं। विभिन्न विषयों की पुस्तकें तथा संदर्भ पुस्तकें ज्ञान में वृध्दि करती हैं।

2) पुस्तकें विद्यार्थियों के स्वाध्याय को बढावा देती हैं।

3) पढ़ने की आदतों को पुस्तकालय कें माध्यम से डाला जा सकता है।

4) पुस्तकालय अच्छे साथी के रूप में पुस्तकों को पढ़ने के लिए प्रोत्साहित करता है।

5) पाठ्यक्रम को समृध्द बनाने का कार्य करता है।

6) सद्साहित्य पढ़ने को प्रोत्साहित करता है।

7) बच्चों में शब्दकोष, संदर्भ ग्रन्थों आदि के उचित प्रयोग की कुशलता विकसित करता है।

पुस्तकालय कक्ष ½Library Room½

पुस्तकालय भवन का क्षेत्रफल 20 × 90 के हॉल जैसे कक्ष से प्रारंभ होकर 15 × 20 का एक स्टोर भी हो सकता है। इसकी स्थिति केन्द्रीय होनी चाहिए। साथ ही साथ ऐसी जगह पर होनी चाहिए जहाँ शोर-शराबा न होता हो। पुस्तकालय में प्राकृतिक हवा और प्रकाश की व्यवस्था होनी चाहिए। भवन का फर्श आवाज ना करे। पुस्तकालय का फर्नीचर आकर्षक होना चाहिए। इसमें पढ़ने वाली मेजों की व्यवस्था हो। इनका आकार 3 × 5 होना चाहिए। कुर्सियाँ हल्की हों तथा मजबूत हों। पत्र-पत्रिकाओं के लिए मेग्जीन स्टैंड हो जहाँ उन्हें प्रदर्शित किया जा सके। 2-4 डिस्प्ले बोर्ड होने चाहिए जिन पर पुस्तकालय नियम, नवीन पुस्तकों का प्रदर्शन, सूचना प्रदर्शन किया जा सके। पुस्तकालय में लाइब्रेरियन के लिए काउंटर या मेज होनी चाहिए| पुस्तकों की तलाश में कार्ड तालिका पेटिका बहुत उपयोगी होती है| पुस्तकों के लिए बनवायी गई अलमारियाँ ही उपयोग में लानी चाहिए। पुस्तकालय परिषद् ने पुस्तकालय के महत्व को इस प्रकार बताया है:

1) पुस्तकालय अध्यापक, बच्चे तथा उनके माता-पिता एवं अभिभावकों की आवश्यकताओं को संतुष्ट करने के लिए सहयोग देगा।

2) छात्र-छात्राओं को ऐसी उपयोगी एवं सर्वोत्तम पुस्तकालय संबंधी सेवाएँ प्रदान करना जो कि उनके विकास में सहायक हों।

3) छात्रों को अध्ययन में आनंद एवं संतोष प्राप्त कराने के लिए उन्हें अध्यापन के लिए उत्साहित करना।

4) छात्रों में दृष्य एवं श्रव्य ½Audio-Visual½ साधनों को प्रयोग करने की क्षमता उत्पन्न करना।

5) छात्रो के लिए उपयोगी पुस्तकों के चयन और अन्य सहायक सामग्री का एकत्रीकरण करने के लिए अध्यापकों का सहयोग प्राप्त करना।

भारत में पुस्तकालयों की वर्तमान दशा

मुदालियार आयोग के अनुसार आजकल के अनेक विद्यालयों में पुस्तकालय व्यवस्था नाम मात्र की है। उनमें पुस्तकें पुरानी एवं बच्चों की रूचि के अनुकूल नहीं हैं।

पुस्तकालय संगठन के उद्देश्य

पुस्तकालय संगठन के उद्देश्य निम्निलिखित हैं:

1) छात्रों के साधारण ज्ञान के स्तर में वृध्दि करना।

2) स्वाध्याय के प्रति रूचि उत्पन्न करना।

3) सामान्य ज्ञान की पुस्तकें अध्ययन करने की आदत डाल देना।

4) पाठ्य पुस्तक के अनावश्यक भार को कम करना।

5) अवकाश के समय का सदुपयोग करना।

6) विविध स्वाध्याय से आत्मसंस्कार करना सीखना।

7) शब्दकोष का ठीक-ठीक प्रयोग करना सीखना।

8) किसी विशिष्ट भाषा के सक्रिय शब्दकोष में अभिवृध्दि करना।

9) मनोरंजन साहित्य से आराम करना सीखना।

10) पुस्तकों का उचित प्रयोग सीखना।

11) कक्षा में दी गई सूचना को समृध्द करना॥

12) स्वतंत्र विचार एवं मौलिक चिंतन करने का प्रशिक्षण देना।

विद्यालय पुस्तकालयों के प्रकार

1) कक्षा पुस्तकालय ½Class Library¾- यह पुस्तकालय प्रत्येक कक्षा में होना चाहिए। एक शिक्षक को बच्चों को चुनना चाहिए जो कि उनके इस कार्य में सहायता करेगा। ऐसा करने से छात्रों में पुस्तक रखने का ढंग आ सकेगा। विद्यालय पुस्तकालय एवं कक्षा पुस्तकालय में कोई विरोधी नहीं है बल्कि वे तो एक दूसरे के पूरक हैं और दोनों का अपना-अपना महत्व है। कक्षा पुस्तकालय का अर्थ कक्षा के कमरे में भी पुस्तकालय का होना है।

2) विषय पुस्तकालय- जिस प्रकार छोटी कक्षाओं में कक्षा पुस्तकालय लाभदायक होते हैं, उसी प्रकार उच्च कक्षाओं के लिए विषय पुस्तकालय उपयोगी होते हैं।

पुस्तकालय सामग्री का चयन

1) पुस्तकों, पत्र-पत्रिकाओं के चयन के समय बच्चों की रूचि ध्यान में रखनी चाहिए।

2) इन पुस्तकों के चयन में शिक्षकों की आवश्यकताओं को भी ध्यान में रखना चाहिए।

3) पुस्तक का बाह्य स्वरूप आकर्षक होना चाहिए।

4) कागज अच्छा हो। छपाई स्पष्ट हो।

पुस्तकालय के अध्यक्ष के कार्य

1) पुस्तकों, पत्र-पत्रिकाओं का वर्गीकरण करना।

2) पुस्तकों के आवेदन के नियम तैयार कर पुस्तकालय समिति से लागू करवाना।

3) पुस्तकों को निर्धारित संख्या में अवदान करना।

4) उत्तम आवश्यक पुस्तकों की सूची तैयार करना।

5) पुस्तकों की संख्या व सुरक्षा रखना।

6) अधिकाधिक पुस्तकों के क्रय को प्रोत्साहित करना।

7) सूचना पट्ट पर उपयोगी पुस्तकों की सूची का प्रदर्शन करना।

8) पुस्तक इन्डेक्स पूरा करना तथा नवीन पुस्तकों को यथा शीघ्र इसमें सम्मिलित करना।

4) छात्रावास ½Hostel¾

हमारी प्राचीन परंपरा के अनुसार विद्यालयों को छात्रावास की आवश्यकता होती है। छात्रावास छात्रों में सामूहिक जीवन जीने की कला विकसित करने का उपयुक्त स्थल है। इसमें विद्यार्थी भावी जीवन के लिए सहयोग, साहचर्य और आत्मनिर्भरता का जीवन व्यतीत करने का प्रशिक्षण लेते हैं।

छात्रावास संबंधी कार्य

1) छात्र-छात्राओं की आवास की व्यवस्था

2) भोजन व्यवस्था

3) जल व्यवस्था

4) सफाई व्यवस्था

5) प्रकाश व्यवस्था

6) खेलकूद व्यवस्था

7) सुरक्षा व्यवस्था

8) पर्यवेक्षण व्यवस्था

9) अनुशासन एवं नियंत्रण व्यवस्था

छात्रावास की विशेषताएँ

1) छात्रावास विद्यार्थियों की संख्या को ध्यान में रखकर परिपूर्ण हो ताकि उनके रहन-सहन में कठिनाई ना हो।

2) छात्रावास में भोजनालय की (मेस) व्यवस्था हो।

3) छात्रावास मुख्य विद्यालय भवन से ज्यादा दूर न हो।

4) आसपास का पर्यावरण निःसर्गमय हो।

5) इन्डोर गेम्स की समुचित व्यवस्था हो।

6) छात्रावास के प्रमुख वार्डन का व्यवहार स्नेहयुक्त, सहयोगपूर्ण व अभिभावक तुल्य हो जिससे बच्चों को घर का अभाव महसूस ना हो।

7) छात्रावास की दिनचर्या नियमित हो।

छात्रावास संबंधी समस्याएँ ¼Problems Related to Hostel½

1) कुछ छात्र बिना अनुमति लिए बाहर रहते हैं या बाहर चले जाते हैं।

2) कुछ छात्र छोटे छोत्रों के साथ अच्छा व्यवहार नहीं करते हैं ।

3) कभी-कभी साथी छात्रों, चौकीदार व सहायकों के साथ दुर्व्यवहार करते हैं ।

4) कमरों में सामान की चोरी करते हैं ।

5) कुछ छात्र बाहर के व्यक्तियों को संबंधी बनाकर छात्रावास में ठहराते हैं ।

6) अक्सर छा त्रों में वादविवाद होता है।

7) विभिन्न समितियों के चुनावों को लेकर परस्पर मन-मुटाव होता है।

8) महिला छात्रावासों में अलग तरह की समस्या होती है।

5) विद्यालय प्रयोगशाला ¼School Laboratory½

प्रयोगशाला विद्यालय का बेहद महत्वपूर्ण अंग माना जाता है क्योंकि इस विज्ञान और तकनीकी के दौर में लगभग प्रत्येक विषय में शोध-कार्यों के अंतर्गत प्रयोग द्वारा शोध निष्कर्ष निकालने के लिए तथा भावी जीवन में शोध करने के लिए प्रयोगशाला की आवश्यकता होती है।

प्रयोगशाला का महत्त्व ¼Importance of Laboratory½

1) प्रयोगशाला विद्यार्थी एवं शिक्षकों के लिए महत्वपूर्ण है।

2) प्रयोगशाला में विद्यार्थी क्रियाशील रहते हैं ।

3) प्रयोग के आधार पर निष्कर्ष निकालते हैं ।

4) कार्य और कारण के संबंधो को जोड़ने, तर्कपूर्ण विचार कर निर्णय लेने, छात्रों में रचनात्मक शक्ति के विकास के लिए प्रयोगशाला की आवश्यकता होती है।

5) प्रयोगशाला में कार्य करने से विद्यार्थियों में आत्मविश्वास का निर्माण होता है।

प्रयोगशाला के निर्माण हेतु निम्नलिखित सुझाव हैं:

1) नव-निर्मित प्रयोगशाला में 24-30 विद्यार्थियों के लिए एक साथ बैठने की व्यवस्था होनी चाहिए।

2) प्रयोगशाला में मेज तथा उनके बीच सींक की व्यवस्था हो।

3) सींक में निरंतर जलापूर्ति की व्यवस्था हो।

4) प्रयोगशाला में आवश्यक सामान रखने हेतु अलमारियाँ बनाइ जाए।

5) प्रत्येक वस्तु पर उसका स्पष्ट नाम लिखा जाए।

6) गैस पाइप, विद्युत आपूर्ति तथा इसकी फिटिंग समुचित हो।

7) हवा निकलने के लिए रोशनदान हो।

8) बड़ी खिड़कियाँ हों।

9) कमरे में अंधेरा करने के लिए काले पर्दे हों।

10) श्यामपट्ट हो।

11) सामान रखने के लिए स्टोर अथवा पर्याप्त अलमारियाँ हों।

12) प्रयोगशाला को आकर्षक बनाने के लिए वैज्ञानिकों के चित्र लगाये जाए।

2.9 सारांश

विद्यालय प्रबंधन में वार्षिक कैलेन्डर, दैनिक कार्यक्रम की योजना, समय सारणी, स्टाफ मीटिंग आदि का बेहद महत्व है। विद्यालय प्रबंधन में समय सारणी महत्वपूर्ण है। विद्यालय में संसाधन का प्रबंधन भी आवश्यक है ताकि प्रबंधन के सिद्धान्तों का उचित यथार्थीकरण हो सके।

2.10 अपनी प्रगति की जाँच के लिए अपेक्षित उत्तर

1. 2.3 वार्षिक कैलेन्डर एवं 2.4 दैनिक कार्यक्रम की योजना
2. 2.5 समय सारणी
3. 2.6 स्टाफ मीटिंग
4. 2.7 छात्रों की समस्याएँ
5. 2.8 विद्यालय भवन

2.11 सन्दर्भ पुस्तकें

1. कुमार, सतीश- विद्यालय प्रशासन एवं संगठन
2. कुशवाह, पु एवं सक्सेना, क.- शैक्षिक प्रबंधन एवं विद्यालय संगठन
3. तरुण, हरिवंश- मानक शिक्षा दर्शन एवं शैक्षिक समाजशास्त्र
4. भटनागर, सु., वशिष्ठ, क. एवं सिंह, एम.के.- शैक्षिक प्रबंध और शिक्षा की समस्यायें
5. भट्टाचार्य, जे.सी.- अध्यापक शिक्षा
6. माथुर, सा., शर्मा, स. एवं सिन्हा, जे.सी.- शिक्षा के समाजशास्त्र आधार
7. शर्मा, आर.ए.- शिक्षा प्रशासन एवं प्रबंधन

इकाई 3. विद्यालय संगठन

संरचना

3.1 शिक्षण उद्देश्य

3.2 प्रस्तावना

3.3 विद्यालय संगठन - अर्थ, विशेषताएँ, क्षेत्र, विद्यालय संगठन तथा प्रशासन

3.4 विद्यालय का अन्य शैक्षिक संस्थानों से सम्बन्ध

3.4.1 जिला शिक्षा एवं प्रशिक्षण संस्थान (DIET)

3.4.2 राज्य शिक्षा अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद (SCERT)

3.4.3 राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद् (NCERT)

3.4.4 राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद् (NCTE)

3.4.5 अध्यापक शिक्षा महाविद्यालय (CTE)

3.5 सारांश

3.6 अपनी प्रगति की जाँच के लिए अपेक्षित उत्तर

3.7 संदर्भ पुस्तकें

3.1 शिक्षण उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप निम्नलिखित में सक्षम हो जायेंगे -

1. इस इकाई का पहला उद्देश्य छात्रों को विद्यालय संगठन सम्बन्धी जानकारी से परिचित कराना है ।
2. इकाई का दूसरा उद्देश्य विद्यालय के अन्य शैक्षिक संस्थाओं से सम्बन्ध की जानकारी छात्रों को देना है।

3.2 प्रस्तावना

विद्यालय संगठन एक सोद्देश्य व्यवस्था है। इसका प्रयोजन शैक्षिक उद्देश्य तथा लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए विद्यालय में शिक्षा से सम्बन्धित तथ्यों को संपादित करना है। विद्यालय संगठन के प्रमुख अंगों में प्रधानाचार्य, शिक्षक, छात्र, कर्मचारी, प्रबंध समितियाँ एवं शैक्षिक सुबिधाएँ शामिल हैं जिनमें शिक्षक का प्रमुख स्थान माना जाता है। शिक्षकों के शिक्षण, प्रशिक्षण तथा विकास हेतु शिक्षा से जुड़े शैक्षिक संस्थान अपने-अपने क्षेत्र में कार्य रहे हैं। ये संस्थान समय-समय पर शिक्षकों के विकास के लिए विभिन्न प्रकार के कार्यक्रमों का आयोजन करते रहते हैं।_प्रस्तुत इकाई में विद्यालय संगठन का अर्थ, विशेषताएं, क्षेत्र, विद्यालय संगठन तथा प्रशासन आदि से जुड़ी जानकारी देने का प्रयास किया गया है। इसके अतिरिक्त शिक्षा से जुड़े संस्थान जैसे-जिला शिक्षा एंव प्रशिक्षण संस्थान (DIET), राज्य शिक्षा अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद् (SCERT), राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद् (NCERT), राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद् (NCTE) तथा अध्यापक शिक्षा महाविद्यालय (CTE) की जानकारी प्रस्तुत है।

3.3 विद्यालय संगठन (School Organization)

जब हम विद्यालय प्रशासन की चर्चा करते हैं तो यह स्वाभाविक हो जाता है कि उसे संगठन के रूप में प्रस्तुत किया जाए| आरम्भिक काल में समाज सरल थे। विद्यालय का संगठन शिक्षक, छात्र तथा स्थान तक सीमित रहता था | कालान्तर में समाज के जटिल काम विकसित होने पर समाज के अन्य संगठनों की भांति विद्यालय के संगठन में भी परिवर्तन आया है। संगठन व्यवस्थित रुप से चलता रहे । इसके लिए प्रशासन की आवश्यकता पड़ी । संगठन से विद्यालय की छवि का विकास होता है। श्रम का सही उपयोग होता है।

विद्यालय संगठन की परिभाषा

वर्गीज टी. पाल के अनुसार- विद्यालय संगठन का मुख्य आधार श्रम का उचित वर्गीकरण तथा विभाजन है। शिक्षक का कक्षा के साथ, कक्षा का कमरे के साथ, छात्रों का पाठ्यक्रम तथा शिक्षक पद्धतियों के साथ समायोजन होना, समय का उचित विभाजन आदि विद्यालय को एक संगठित स्वरुप देने में योगदान देता है।

आर्थर मोलनि के अनुसास- संगठन कार्य करने की एक मशीन है जिसमें पुर्जों के रूप में व्यक्ति, उपकरण, विचार, प्रत्यय, प्रतीक, नियम, सिद्धान्त स्वतंत्र तथा मिश्रित रूप में कार्य करते हैं। विद्यालय संगठन एक सोद्देश्य व्यवस्था है। इसका प्रयोजन शैक्षिक उद्देश्यों तथा लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए विद्यालय में शिक्षा से सम्बन्धित सभी तथ्यों को संपादित करना है। शिक्षा बोर्ड के अनु सार- 'प्रत्येक प्रकार के विद्यालय का मुख्य प्रयोजन बच्चों के व्यक्तितव का विकास करना है। विद्यालय बच्चों के व्यक्तित्व के विकास के लिए इस प्रकार सहायता करें कि समाज की आवश्यकता के अनुरुप अपने व्यक्तित्व को विकसित कर सकें।

विद्यालय संगठन की विशेषताएँ

विद्यालय संगठन स्वयं में एक व्यवस्था है। इस व्यवस्था की विशेषताएँ इस प्रकार हैं-

1. परम्परा निर्माण- विद्यालय का दैनिक कार्यक्रम इस प्रकार व्यवस्थित किया जाना चाहिए कि परम्परा बन जाए। प्रार्थना सभा, कक्षा की उपस्थिति, शिक्षण कार्य, विश्राम काल, खेल कूद, सांस्कृतिक कार्यक्रम आदि सभी कार्य परम्परा के अनुसार किये जाते हैं।

2. व्यक्तित्व का विकास- शिक्षा का उद्देश्य है बच्चों का सर्वांगीण विकास है| विद्यालय इस कार्य को वांछित वातावरण का निर्माण कर अंजाम देता है।

3. लचीलापन- विद्यालय का संगठन लचीला होता है। इसमें देश, काल तथा परिस्थिति के अनुसार परिवर्तन किया जा सकता है। विद्यालय में सभी शैक्षिक सुविधाओं को जुटाया जाता है। जो सुबिधाएँ जुटाई नहीं जा सकतीं, उनका विकल्प ढूँढा जाता है।

4. समन्वय एवं सहयोग- विद्यालय संगठन प्रधानाचार्य, शिक्षकों, छात्रों, कर्मचारियों एवं प्रबन्ध समितियों के मध्य समन्वय तथा सहयोग की व्यवस्था है| ये सभी सहयोग द्वारा वांछित लक्ष्यों को प्राप्त करने का प्रयास करते हैं।

5. शैक्षिक अवसरों की समानता- विद्यालय में सभी छात्रों को पढ़ने के समान अवसर प्रदान किये जाते हैं । उन्हें सुबिधाएँ दी जाती हैं।

6. सृजनात्मकता तथा आदर्शवाद- विद्यालय संगठन में सृजनात्मकता का होना आवश्यक है। इससे शैक्षिक आदर्शों की प्राप्ति होती है।

विद्यालय संगठन क्षेत्र

विद्यालय संगठन विद्यालय के कार्य-कलापों की व्यवस्था है। इस दृष्टि से विद्यालय संगठन का क्षेत्र इस प्रकार है-

1. **व्यवस्था के अंगों में सहयोग-** विद्यालय संगठन के अंग हैं- प्रधानाचार्य, शिक्षक, छात्र, कर्मचारी तथा शैक्षिक सुबिधाएँ| इन सभी में सहयोग तथा समन्वय होना चाहिए ।
2. **सामाजिक आवश्यकता की पूर्ति-** विद्यालय का संगठन समाज की आवश्यकताओं की पूर्ति करने वाला होना चाहिए । विद्यालयों में ऐसे पाठ्यक्रम तथा कार्यक्रम चलाये जाने चाहियें जो विद्यालयों के साथ-साथ समुदाय की आवश्यकता की भी पूर्ति कर सकें ।
3. **समय-सारिणी-** विद्यालय को संगठित करने में इसका विशेष महत्व है। समय-सारिणी के द्वारा ही विद्यालय की समस्त क्रियाओं का संगठन किया जाता है।

4. **पाठ्य सहगामी क्रियाएँ-** विद्यालय में केवल पठन-पाठन ही नहीं चलता, अपितु पाठ्यसहगामी क्रियाओं को भी बालक के सर्वांगीण विकास के लिए आयोजित किया जाता है।
5. **संस्थागत योजना-** विद्यालय एक संस्था है| इस संस्था का उद्देश्य भावी समाज का निर्माण करना है। इसकी भावी योजना के अनुरुप साधन जुटाने का कार्य सर्वोपरि हो जाता है। विद्यालय संगठन के माध्यम से अनेक योजनाएँ बनाई जाती हैं जो भविष्य की आवश्यकताओं की पूर्ति करती हैं।
6. **प्रवेश, परीक्षा आदि-** सत्रारंभ से प्रवेश और सत्रान्त में परीक्षा के मध्य विद्यालय की अनेक प्रकार की कार्य-प्रणाली तथा गतिविधियाँ सम्पन्न कराई जाती हैं।
7. **विद्यालय समुदाय सम्बन्ध-** विद्यालय को लघु समुदाय कहा गया है। इसलिए विद्यालय तथा समुदाय के सम्बन्धों का विकास करना भी विद्यालय संगठन का अंग है।

विद्यालय संगठन तथा प्रशासन

विद्यालय संगठन तथा शैक्षिक प्रशासन, वस्तुत: एक लक्ष्य को प्राप्त करने की दो प्रक्रियाएँ हैं जो साथ-साथ सम्पन्न होती हैं। संगठन तथा प्रशासन का तुलनात्क विवरण इस प्रकार है-

(1) शैक्षिक प्रशासन का क्षेत्र व्यापक है और विद्यालय संगठन का सीमित । आर. एम. फिन्डेल के शब्दों में - 'प्रशासन तथा संगठन एक दूसरे से इस रुप में सम्बन्धित हैं कि प्रशासन को संगठन का अभिन्न अंग कहा जाता है।

(2) ग्रिफ्फिथ्स (D. E. Griffiths) ने प्रक्रिया के आधार पर प्रशासन तथा संगठन का भेद बताते हुए कहा है-'सामाजिक संगठन के व्यक्तियों से सम्बंधित प्रशासन एक ऐसी प्रक्रिया है जो उन्हें नियंत्रित करती है तथा क्रियाओं को उचित निर्देशन देती है।'

(3) प्रशासन में नियंत्रण निहित होता है। नियंत्रण के द्वारा लक्ष्य सिद्धि के लिए सीमित दायरे में रहना आवश्यक होता है। इससे कार्य प्रणाली में व्यवस्था बनी रहती है। एस. एन. मुकर्जी के शब्दों में- 'प्रशासन एक प्रक्रिया है जो किसी संगठन की सम्पूर्ण कार्य पद्धति को नियंत्रित करती है तथा संगठन के रचने वाले सदस्यों का सहयोग भी प्राप्त करती है।

3.4 विद्यालय का अन्य शैक्षिक संस्थानों से सम्बन्ध

विद्यालय संगठन में महत्पूर्ण स्थान शिक्षक का होता है1 वास्तव में शिक्षक को विद्यालय संगठन का हृदय माना जाता है। विद्यालय में पर्याप्त संख्या में विभिन्न विषयों एवं प्रवृत्तियों में दक्ष एवं सुयोग्य शिक्षकों का होना एक अनिवार्य आवश्यकता है। शैक्षिक कार्यक्रमों की सफलता अध्यापक के व्यवहार, योग्यता एवं कार्यप्रणाली पर ही निर्भर करती है । वर्तमान समय में अध्यापक का विद्यालय में प्रमुख स्थान माना जाता है । शैक्षिक एवं मनोविज्ञानिक शोध ने यह सिद्ध कर दिया है कि शिक्षक-छात्र अनुक्रिया में शिक्षक की भूमिका अत्यन्त महत्वपूर्ण है। चूँकि शिक्षा का तात्पर्य बच्चों के सम्पूर्ण व्यक्तित्व के सर्वांगीण विकास से है जिसके अंतर्गत अध्यापक का कार्य न केवल बच्चों का मानसिक विकास करना है वरन उसके सामाजिक, शारीरिक, नैतिक, सांवेगिक एवं आध्यात्मिक विकास में भी योगदान करता है।

विद्यालय का विकास एंव गुणवत्ता शिक्षकों की कार्यकुशलता पर निर्भर करती है। आज जीवन के सभी क्षेत्रों में विकास तथा प्रगति हो रही है और नये-नये आयामों का उपयोग किया जा रहा है। इससे हमारी शिक्षण प्रक्रिया भी प्रभावित हो रही है। शिक्षण-अधिगम की प्रक्रिया में भी नये-नये प्रयोग तथा नये-नये आयाम विकसित हुए हैं जिससे शिक्षक की कुशलता एवं सक्षमता का विकास होता है। इसलिए विद्यालय प्रबंधन का यह दायित्व है कि वह अपने शिक्षकों के विकास हेतु कार्यक्रमों की व्यवस्था करे जिससे उसके विद्यालय के शिक्षकों को नये-नये आयामों की जानकारी हो सके और उन्हें अपने कक्षा शिक्षण में उपयोग करके उसे और अधिक प्रभावशाली बना सकें । इसलिए शिक्षकों को आधुनिकतम बनाने के लिए शिक्षकों के विकास हेतु कार्यक्रमों का नियोजन एवं उनकी व्यवस्था करना आवश्यक है।

शिक्षकों के शिक्षण, प्रशिक्षण तथा विकास हेतु शिक्षा से जुड़े शैक्षिक संस्थान अपने-अपने क्षेत्र में कार्य कर रहे हैं । ये शैक्षिक संस्थान समय-समय पर शिक्षकों के लिए उनके विकास हेतु कार्यक्रमों का आयोजन करती रहती है इसलिए विद्यालय प्रबंधन तथा प्राचार्य को प्रोत्साहित करना चाहिए कि वह इन कार्यक्रमों में जाकर भाग लें तथा उनका लाभ उठायें जिससे उनका विकास हो सके।

शिक्षकों के शिक्षण-प्रशिक्षण तथा उनके विकास से जुड़े कुछ प्रमुख शैक्षिक संस्थानों का विवरण यहाँ दिया जा रहा है-

(1) जिला शिक्षा एवं प्रशिक्षण संस्थान (District Institute of Education and Training- DIET)

(2) राज्य शिक्षा अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद (State Council of Educational Research and Training - SCERT)

(3) राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद् (National Council of Educational Research and Training - NCERT)

(4) राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद (National Council of Teacher Education - NCTE)

(5) अध्यापक शिक्षा महाविद्यालय (College of Teacher Education - CTE)

3.4.1 जिला शिक्षा एवं प्रशिक्षण संस्थान (District Institute of Education and Tearing - DIET)

उद्देश्य

प्राथमिक स्तर की शिक्षा के विकास तथा अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा के क्रियान्वयन हेतु 1988 में जिला स्तरीय शिक्षा तथा प्रशिक्षण संस्थान की स्थापना की गई। राष्ट्रीय शिक्षा नीति तथा क्रियान्वयन कार्यक्रम (POA) के अनुसार -

(1) जिला शिक्षा और प्रशिक्षण संस्थान स्थापित किए जाएगे जो प्रारंभिक विद्यालयों के अध्यापकों और अनौपचारिक एवं प्रौढ़ शिक्षा में कार्यरत शिक्षकों के लिए पूर्व सेवा एवं सेवाकालीन पाठ्यक्रम आयोजित कराने में सक्षम होंगे ।

राष्ट्रीय शिक्षक-शिक्षा परिषद (NCTE) को आवश्यक संसाधन एवं क्षमताओं से युक्त किया जाएगा, जिससे कि वह शिक्षक शिक्षा संस्थान को प्राधिकृत कर सके और पाठ्यचर्या एवं शिक्षण विधियों के संबंध में मार्गदर्शन कर सके ।

जिला शिक्षा एवं प्रशिक्षण संस्थान के कार्य

1) सेवारत शिक्षक प्रशिक्षण (In-Service Teacher Training)- डायट सेवारत शिक्षकों का प्रशिक्षण आयोजित करता है । यह प्रशिक्षण प्राथमिक व उच्च प्राथमिक विद्यालयों के अध्यापकों के लिए तीन सप्ताह का शिक्षण विषय पर आधारित प्रशिक्षण होता है।

2) शैक्षिक प्रतियोगिताएँ (Educational Competitions)- उच्च प्राथमिक स्तर के अध्यापकों के लिए अध्यापन प्रतियोगिता एवं निबंध लेखन प्रतियोगिता का आयोजन करती है।

3) संगोष्ठियाँ (Seminars)- डायट विविध विषयों पर आधारित संगोष्टियों का आयोजन करता है।

4) नियुक्ति एवं प्रशिक्षण (Appointment and Training)- नव नियुक्त शिक्षकों को सेवा नियमों से अवगत कराने हेतु 6 दिवसीय नियुक्तिपूर्व प्रशिक्षण का आयोजन डायट द्वारा किया जाता है।

5) न्यूनतम अधिगम स्तर परियोजना (Project on Minimum Leaming level M.L.L.)- प्रभावी शिक्षण के संबंध के निश्चित उपलब्धियों को प्राप्त करने के लिए राजस्थान के समस्त जिला एवं शिक्षा प्रशिक्षण संस्थानों द्वारा अपने-अपने जिलों के 20 विद्यालयों में कक्षा 1 व 2 में न्यूनतम अधिगम स्तर आधारित शिक्षण सुचारु रुप से चलाया जाता है।

6) प्रयोगशाला क्षेत्र (Lab. Area)- डायट लैब एरिया की शैक्षिक गतिविधियों को सुव्यवस्थित एवं उपचारात्मक ढंग से संचालित करने का कार्य करता है। लैब एरिया में नामांकन वृद्धि एवं ठहराव,

आदर्शपाठ, प्रार्थना सभा, सुधार, वृक्षारोपण, विज्ञान किट में प्रभावी प्रयोग, विद्यालय संकुल के लिए सुदृढीकरण आदि के लिए विविध प्रयोग किए जाते हैं।

7) क्रियात्मक अनुसंधान (Action Research)- क्रियात्म्क अनुसंधान शिक्षकों द्वारा किया गया अनुसंधान है, जिसके अंतर्गत शिक्षक, स्वयं की समस्याओं का निदानात्मक ढंग से हल ढूँढ़ते हैं। यह शोध कार्य डायट शिक्षकों द्वारा संपन्न करवाती है।

8) अनौपचारिक शिक्षा (Informal Education)- डायट अनौपचारिक शिक्षा में गुणवत्ता लाने की दृष्टि से अनेक कार्यक्रमों का आयोजन करती है।

डायट के उद्देश्य (Objectives of DIET)

डायट के प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित हैं -

1) आदर्श प्रशिक्षण केन्द्र के रुप में प्राथमिक शिक्षा का गुणात्मक सुधार ।

2) पूर्व प्राथमिक एवं प्राथमिक विद्यालयों के शिक्षकों को शिक्षा के क्षेत्र में हो रहे परिवर्तनों से परिचित कराना ।

3) क्रियात्मक अनुंसंधान एवं प्रायोगिक कार्य की व्यवस्था करना ।

4) अध्यापकों को साहित्यिक, सामाजिक, सांस्कृतिक कार्यक्रमों और व्यायाम, खेलकूद में भाग लेने के लिए प्रेरित करना ।

5) सेवारत और सेवा पूर्व अध्यापकों को प्रशिक्षण एवं गोष्ठियों में सहभागी कराना।

6) अनौपचारिक एवं प्रौढ शिक्षा के अनुदेशकों व पर्यवेक्षकों के लिए प्रशिक्षण का आयोजन करना।

7) शिक्षा संस्थानों, जिला शिक्षा बोर्ड, विद्यालय संगम आदि को सुचारु से चलाने के लिए शैक्षिक परामर्थ एवं मार्गदर्शन देना ।

3.4.2 राज्य शिक्षा अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद् (State Council of Educational Research and Training - SCERT)

राष्ट्रीय स्तर पर विद्यालय शिक्षा के अनुसंधान, प्रशिक्षण, पाठ्यक्रम, पाठ्यपुस्तकें, सहायक सामग्री आदि के विकास के लिए राज्य शिक्षा अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद् की स्थापना सन् 1961 में की गई थी। इसके कार्यों को राज्यों में संचालित करने के लिए प्रत्येक राज्य में राज्य शिक्षा अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषदों की स्थापन की गई। इस परिषद् के राज्य में निम्निलिखित कार्य हैं:

1. शिक्षा में विभिन्न स्तरों पर शोध कार्यों को करना तथा उन शोध कार्यों में समन्वय स्थापित करना।
2. राज्य में अध्यापक शिक्षा के विकास का अवलोकन करना ।
3. विद्यालयी शिक्षा के विकास में एक एजेण्ट के रुप में कार्य करना।
4. राज्य की माध्यामिक शिक्षा तथा प्रशिक्षण की क्रियाओं, डाईट (DIET) के कार्यों, अध्यापक शिक्षा संस्थाओं तथा उच्च शिक्षा संस्थान का पर्यवेक्षण करना है।
5. विशिष्ट शिक्षा के लिए कार्यक्रमों को लागू करना और एन. सी. ई. आर. टी. (NCERT) के शैक्षिक कार्यक्रमों केा राज्य में लागू करना ।
6. पाठ्यक्रम के अनुसार विद्यालयों के लिए पाठ्य पुस्तकों को तैयार करना।
7. विद्यालयी शिक्षा के लिए अनुदेशन सामग्री को बनाना ।
8. सेवारत शिक्षकों के लिए अभिविन्यास पाठ्यक्रमों की व्यवस्था करना और अध्यापक शिक्षा के कार्यक्रमों में समन्वय स्थापित करना।
9. शिक्षकों के वृत्तिक क्किास तथा अन्य शिक्षा अधिकारियों के विकास हेतु पत्राचार पाठ्यक्रम तथा सम्पर्क पाठ्यक्रमों की व्यवस्था करना ।
10. शिक्षा की विभिन्न समस्याओं के लिए शोध कार्यो को प्रोत्साहित करना।

11. प्रौढ़ शिक्षा तथा अनौपचारिक शिक्षा के कार्यक्रमों का आकलन करना और राज्य सरकार को उनकी प्रगति के समबन्ध में अवगत कराना।
12. राज्य में छात्रों को छात्रवृत्तियाँ वितरण हेतु परीक्षाओं की व्यवस्था करना जिससे प्रतिभाशाली छात्रों को छात्रवृत्ति प्राप्त हो सके ।
13. यह संस्था राज्य के शैक्षिक तकनीकी संस्थाओं का नियंन्त्रण करती है।
14. यह संस्था राज्य के जनसंख्या शिक्षा तथा पर्यावरण शिक्षा के कार्यक्रमों की प्रगति का अवलोकन करती है।
15. यह संस्था बालिकाओं की शिक्षा की प्रगति तथा समाज के कमजोर छात्रों हेतु शैक्षिक कार्यक्रमों की व्यवस्था की भी देख-भाल करती है।

इस परिषद् का सर्वोच्च अधिकारी निदेशक होता है। यह जिला अधिकारियों से निकट सम्पर्क रखता है और प्राचार्यों और शिक्षकों को निर्देशन तथा विकास हेतु प्रोत्साहन देता है। इसकी सहायता के लिए एक उप-निदेशक प्रशासन तथा शैक्षिक कार्यो में सहायता के लिए शैक्षिक उप-निदेशक भी होते हैं। प्रत्येक विभाग का अध्यक्ष होता है। वह अपने क्षेत्र में विकास, अनुसन्धान, प्रशिक्षण, प्रसार सेवाओं की व्यवस्था एवं सहायता करते हैं तथा अपने क्षेत्र की समीक्षा करके अपने विभाग की गतिविधियों एवं प्रगति, के बारे में निदेशक को अवगत कराते हैं।

3.4.3 राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद् (National Council of Educational Research and Training- NCERT)

तृतीय पंचवर्षीय योजना, 1961-66 के अन्तर्गत स्वायत्तशासी इकाई के रुप में शिक्षा के क्षेत्र में केन्द्रीय अभिकरण को स्थापित करने के लिए गठित विचार को मूर्त रुप देने के लिए इस परिषद् की स्थापना हुई। 1 सितम्बर, 1966 को समिति पंजीकरण अधिनियम (1860) के तहत राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसन्धान और प्रशिक्षण परिषद् की स्थापना हुई जिसका मुख्यालय नई दिल्ली के श्री अरविन्द मार्ग पर स्थित है तथा राष्ट्रीय शिक्षा संस्थान, नई दिल्ली को इसके साथ सम्बन्धित किया गया। एन. सी. ई; आर. टी. के अन्तर्गत पाँच क्षेत्रीय शिक्षा संस्थान भी अध्यापक शिक्षा के क्षेत्र में कार्यरत हैं।

उद्देश्य

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंन्धान एवं प्रशिक्षण परिषद् (NCERT) के निम्नांकित उद्देश्य हैं-

1. शिक्षा के क्षेत्र में विभिन्न स्तरीय शोध कार्यक्रमों का संगठन और क्रियान्वयन करना।
2. उच्च स्तरीय सांवापूर्वकालीन एवं सेवाकालीन अध्यापिका प्रशिक्षण कार्यक्रमों का संचालन करना ।
3. अध्यापक शिक्षा संस्थाओं में विस्तार सेवा कार्यक्रमों का प्रबन्धन राज्य सरकारों की सहायता से नवीन शिक्षण विधि एवं तकनीकियों के अनुप्रयोग हेतु करना ।
4. विद्यालयीय स्तर पर (सी. बी. एस. ई. बोर्ड के पाठ्यक्रमानुसार) पाठ्य-पुस्तक तथा शिक्षा सम्बन्धी शोध पत्रिका एवं अन्य साहित्यों का प्रकाशन करना ।
5. राष्ट्रीय शिक्षा संस्थान की स्थापना करते हुए शैक्षिक प्रशासन एवं प्राध्यापकों के लिए उच्च प्रशिक्षण एवं अनुसन्धान के लिए विकासात्मक प्रयत्न करना ।
6. शिक्षण उद्यम में उन्नयन हेतु प्रशिक्षण संस्थाओं की स्थापना करना ।
7. मन्त्रालय के साथ ही अन्य इकाइयों को भी निर्देशन एवं परामर्थ सेवा प्रदान करना आदि।

कार्य

विभिन्न योजनाओं के माध्यम से परिषद् के द्वारा यह प्रयास किया जाता है कि अध्यापक शिक्षा स्तर पर उन्न्यन कार्य करना सम्भव हो सके। पाठ्यक्रमों को विकसित और आधुनिक बनाये रखने के लिए शिक्षकीय निर्देशन पुस्तिका, छात्र कार्य- पुस्तिका (वर्क-बुक) और उपयुक्त श्रव्य-दृश्य शिक्षण सामग्री का विकास करना, अध्यापक शिक्षा में उत्रयन हेतु विस्तार कार्यक्रम और क्षेत्रीय सेवा का विस्तार करना,

परीक्षा प्रणाली में सुधार के लिए ठोस प्रयास करते हुए उसे अधिकाधिक तौर पर वस्तुनिष्ठ रुप प्रदान करना, विभिन्न विद्यालयीय विषयों में अध्यापकों को सेवाकालीन प्रशिक्षण प्रदान करना, विज्ञान तथा गणित शिक्षा के क्षेत्र में अभिनव कार्यक्रमों का निर्माण और क्रियान्वयन करना जो देश में औद्योगिक और तकनीकी विकास की दिशा में सार्थक सिद्ध हो सके आदि परिषद् के द्वारा किये गये एवं आगामी दिनों में किये जाने वाले मूलभूत एवं ठोस कार्यक्रलाप हैं।

इस हेतु निम्न कार्यक्रमों का आयोजन परिषद् के द्वारा किया जाता है-

1. राज्य केन्द्रो के द्वारा सेवाकालीन प्रशिक्षण, शैक्षिक नियोजन ओंर प्रशासन के क्षेत्र में आने वाली कठिनाईयों के बारे में जानकारी प्राप्त करना ।
2. विज्ञान, सामाजिक विज्ञान तथा अन्य विषयों के शिक्षण को प्रभावकारी बनाने के लिए उपयुक्त शिक्षण सहायक सामग्रियों (चार्ट, प्रतिरुप, मानचित्र, श्रव्य-दृश्य सामग्री) का निर्माण करना ।
3. बेसिक शिक्षा और प्रौढ़ शिक्षा तथा साक्षरता कार्यक्रम को अग्रसारित करना।
4. विज्ञान, गणित, सामाजिक विज्ञान आदि के क्षेत्र में विशेषकर पाठ्यक्रम एवं शिक्षण विधि में सुधार हेतु शैक्षिक पाठ्यक्रम, उपकरण, पाठ्य-सामग्री आदि का निर्माण करना।
5. प्रादेशिक शिक्षा संस्थानाधीन ग्रीष्मकालीन पाठ्यक्रम एवं सेवाकालीन कार्यक्रम आयोजित करना।
6. विज्ञान और गणित शिक्षकों के लिए अन्तर्राष्ट्रीय तकनीकी विकास अभिकरण और यू. जी. सी. की सहायता से ग्रीष्मकालीन कार्यक्रम संचालित करना ।
7. संयुक्त राज्य अमेरिका के स्वास्थ्य और कल्याण विभाग की सहायता से शोध कार्य संचालित करना।
8. शोध एवं प्रतिभा खोज अध्येतावृत्तियाँ प्रदान करना।
9. अध्यापक, पाठ्यक्रम, शिक्षण विधि, शिक्षण, तकनीकी आदि के क्षेत्र में समस्याओं के निदान हेतु शोधकार्य व्यवस्थित करना।
10. विद्यालय भवन निर्माण में किफायत हेतु शोध कार्य करना, शैक्षिक सर्वेक्षण करना, सामाजिक अध्ययन के क्षेत्र में मानक शब्दावाली निर्धारण की दिशा में ठोस प्रयास करना आदि।

3.4.4 राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद् (National Council of Teacher Education - NCTE)

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसन्धान और प्रशिक्षण परिषद् काफी दिनों तक राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद् के लिए भी मुख्यालय के रुप में कार्य करती रही और बाद में जब इसे वैधानिक दर्जा मिला तो यह संस्था अलग कार्यालाय में कार्य करने लगी। कोठारी आयोग (1964-66) के द्वारा अपनी संस्तुति में, शिक्षा के स्तरोन्नयन का दायित्व पर्याप्त मात्रा में भारत सरकार पर है, यह कहे जाने के बाद 1973 में राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद् का गठन किया गया था जब केन्द्रीय शिक्षा परामर्शदात्री समिति (1972) ने इस आशय का एक प्रस्ताव पारित किया।

केन्द्रीय और राज्य सरकारों को अध्यापक शिक्षा के क्षेत्र में व्याप्त समस्याओं एवं विभिन्न कठिनाइयों के निराकरण हेतु आवश्यक सुझाव देने के लिए ही मूलत: इस परिषद् का गठन किया गया । बाद में 1995 में एक विधेयक के माध्यम से इस परिषद् को वैधानिक दर्जा दिया गया और एन. सी. ई. आर. टी. के समान ही स्वायत्तशासी होने का अधिकार भी मिल गया। नई दिल्ली में आज इस परिषद् का भी अपना पृथक् कार्यालय, है।

अध्यापक शिक्षा के कार्य - (1) अध्यापक शिक्षा के विभिन्न स्तरीय पाठ्यक्रमों के संचालन के लिए विश्वविद्यालय, महाविद्यालय या संस्थानों के शिक्षा विभागों को परिषद् के द्वारा मान्यता प्राप्त करना आवश्यक माना गया और संसाधन एवं सुविधाओं की उचित जाँच करने के बाद जो कि सम्बन्धित विभाग में उपलब्ध हो परिषद् का कार्य उन्हें मान्यता प्रदान करना है।

(2) अध्यापक शिक्षा हेतु निर्धारित मानकों को ध्यान में रखते हुए परिषद् का कार्य अध्यापक शिक्षा संस्थानों की निरीक्षण समितियों के माध्यम से जांच करने के बाद उनका प्रमाणीकरण भी करना है| मान्यता में जहाँ उपाधि को वैध करार दिया जाता है वहीं पर प्रमाणीकरण में संस्थान को अध्यापक शिक्षा के किसी भी स्तरीय पाठ्यक्रम को संचालित करने के लिए योग्य करार दिया जाता है जो कि शिक्षण-प्रशिक्षण सम्बन्धी आवश्यक साधन एवं सुविधाओं की पर्याप्तता पर निर्भर करता है।

(3) परिषद् का उपयुक्त उपाधिधारी किसी व्यक्ति को शिक्षण कार्य को करने के लिए अधिकार-पत्र प्रदान करना आता है। पहले इसे दो वर्ष तक के लिए और बाद में 5 या 10 वर्ष की अवधि हेतु और अन्ततः आजीवन के लिए वैध अधिकार प्रदान किये जाने का प्रावधान किया गया है।

(4) इन प्रमुख कार्यों के अतिरिक्त जिन अन्य कार्यों को परिषद् के लिए निर्दिष्ट किया गया है उनमें से अध्यापक शिक्षा के क्षेत्र में विभिन्न वैषयिक सर्वेक्षण का कराना और प्राप्त परिणामों का प्रकाशन करना, अध्यापक शिक्षा कार्यक्रमों के लिए समन्वयन और नियम (को ऑर्डीनेटिंग-मॉनीटरिंग) करना, अध्यापक -शिक्षकों के लिए न्यूनतम योग्यता सम्बन्धी दिशा-निर्देश तैयार करना, किसी स्तर पर अध्यापक शिक्षा पाठ्यक्रम में सम्मिलित होने के लिए मानक (न्यूतम शैक्षिक योग्यता, कुशलता, दक्षता आदि) को निर्धारित करना, अध्यापक शिक्षा में नवीन पाठ्यक्रम एवं कार्यक्रमों के प्रारम्भीकरण के लिए उपयुक्त दिशा-निर्देश और विशिष्ट आवश्यकताओं की सूची तैयार करना जिनमें सामान्य तथा विशिष्ट दोनों ही स्तरीय अध्यापक शिक्षा शामिल हों।

(5) अध्यापक शिक्षा परिषद् के अधीन कार्यक्रमों में प्रथम उपाधि स्तरीय अध्यापक शिक्षा, पाठ्यक्रम जिन्हें स्ववित्तपोषित अथवा पत्राचार शिक्षा के रुप में चलाया जाता रहा हों, उन्हें बन्द कर उनके स्थान पर अन्य कार्यक्रमों को संचालित करने के लिए प्रबन्ध करना आता है ताकि गुणवत्ता स्तर एवं मानक में न्यूनता न आ सके और इस प्रकार से अध्यापक शिक्षा के क्षेत्र में व्याप्त वाणिज्यिकता की प्रवृत्ति को रोकना भी सम्भव हो सके ।

(6) अध्यापक / अध्यापिकाओं को उद्यमगत मान्यता एवं आचार संहिता से परिचित कराने के लिए दिशा-निर्देशन कार्यक्रमों का आयोजन करना ताकि इस उद्यम के सन्दर्भ में कुछ सामान्य, नैतिक एवं मूल्यगत मान्यताओं का त्याग करना भारतीय संस्कृति के संन्दर्भ में सम्भव न हो सके । अध्यापक शिक्षा के लिए पाठ्यचर्या प्रारुप का निर्माण करना जो सैद्धान्तिक, व्यावहारिक और शिक्षण अभ्यास तथा सामुदायिक सहकार्य से सम्बन्धित हो ।

(7) शिक्षण विधि, तकनीकी, प्रतिमान, मूल्यांकन प्रक्रिया, निरन्तर एवं अनौपचारिक शिक्षा, प्रशासनिक संरचना, शिक्षण सहायक उपकरण तथा माध्यम (मीडिया) आदि को समुचित ढंग से विकसित करना आदि अन्य कार्यक्रम हैं।

(8) विभिन्न स्तरीय उद्देश्यों का निर्धारण करना, अध्यापक शिक्षा के क्षेत्र में सूचना-पत्र तथा शोध-पत्रिका आदि का प्रकाशन करना, अध्यापक शिक्षा से सम्बन्धित साहित्य का निर्माण और प्रकाशन करना, इस क्षेत्र में प्रवेश हेतु परीक्षा एवं साक्षात्कार आदि के अभिमत संग्रह करना तथा कार्यशाला, संगोष्ठी आदि के माध्यम से उस पर नियमित रूप में परिचर्चा करना, द्विवर्षीय तथा चतुर्वर्षीय अध्यापक शिक्षा कार्यक्रमों के लिए दिशा-निर्देशन, पाठ्यक्रम, व्यवस्थापन पद्धति आदि को प्रस्तुत करना आदि भी आते हैं।

3.4.5 अध्यापक शिक्षा महाविद्यालय (College of Teacher Education- CTE)

शैक्षिक नवाचार की गुणवत्ता को बढ़ाने की दृष्टि से 1987-88 में विभिन्न चरणों में सी. टी. ई. की स्थापना की गई।

शिक्षक-शिक्षा महाविद्यालय के कार्य (Functions of C.T.E.)

1. माध्यमिक शिक्षा के लिए शिक्षक तैयार करना । इसके लिए पूर्व सेवा शिक्षक शिक्षा (बी. एड.) पाठ्यक्रम का प्रशिक्षण देना ।

2. सेवारत शिक्षकों के लिए कार्यक्रम का आयोजन करना ।

3. सेवारत शिक्षकों के लिए विषय संबंधी पाठ्यक्रम का आयोजन करना ।

4. विद्यालय-महाविद्यालय में नवाचार व प्रयोग के कार्यक्रम का संचालन करना ।

5. मूल्याधारित शिक्षा, कार्यानुभव, पर्यावरण शिक्षा, जनसंख्या शिक्षा, कंम्प्यूटर शिक्षा आदि से संबंधित प्रशिक्षण देना।

6. शिक्षक-शिक्षा में सामुदायिक कार्य को सहायता देना ।

7. व्यावसायिक संस्थाओं को सहायता देना

शिक्षक-शिक्षा महाविद्यालयों की स्थापना माध्यमिक शिक्षा के अध्यापकों के लिए सेवारत एवं सेवा पूर्व कार्यक्रमों के आयोजन के लिए की गई है। और इन महाविद्यालयों का उद्देश्य द्वितीय श्रेणी अध्यापकों को प्रशिक्षण देना, क्रियान्वित करना और उनके ज्ञान का नवीनीकरण करना है।

3.5 सारांश

विद्यालय संगठन स्वयं में एक व्यवस्था है। इस व्यवस्था में प्रधानाचार्य, शिक्षक, छात्र, कर्मचारी, आदि प्रमुख अंगों के रुप में आपस में सहयोग तथा समन्वय के साथ कार्य करते हैं। परंपरा निर्माण, छात्रों के व्यक्तित्व का विकास, लचीलापन, शैक्षिक अवसरों की समानता, सृजनात्मकता तथा आदर्शवादिता आदि विद्यालय संगठन की विशेषताएँ हैं। शिक्षकों के शिक्षण, प्रशिक्षण तथा विकास के कार्य हेतु जिला शिक्षा एवं प्रशिक्षण संस्थान, राज्य शिक्षा अनुसंधान एवं प्रितक्षण परिषद, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद, राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद एवं अध्यापक शिक्षा महाविद्यालय आदि संस्थाये कार्यरत हैं। ये स्थायें शिक्षकों से जुड़े हुए अनेक कार्यक्रमों को आयोजन समय-समय वह करती रहती हैं।

अपनी प्रगति की जाँच करें

(1) विद्यालय संगठन क्या है ? विद्यालय संगठन की विशेषताएँ तथा प्रमुख क्षेत्र बताइए ।

_____

(2) विद्यालय का अन्य शैक्षिक संस्थायें से सम्बन्ध इन संस्थानों के कार्यों द्वारा स्पष्ट कीजिए ।

_____

(3) राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद् (NCTE) के कार्यों का वर्णन कीजिए ।

_____

3.6 अपनी प्रगति की जाँच के लिए अपेक्षित उत्तर

1. 3.3 विद्यालय संगठन - अर्थ, विशेषताएँ, क्षेत्र, विद्यालय संगठन तथा प्रशासन
2. 3.4 विद्यालय का अन्य शैक्षिक संस्थानों से सम्बन्ध
3. 3.4.4 राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद् (National Council of Teacher Education - NCTE)

3.7 सन्दर्भ पुस्तकें

1. कुमार, सतीश- विद्यालय प्रशासन एवं संगठन
2. कुशवाह, पु एवं सक्सेना, क.- शैक्षिक प्रबंधन एवं विद्यालय संगठन
3. तरुण, हरिवंश- मानक शिक्षा दर्शन एवं शैक्षिक समाजशास्त्र
4. भटनागर, सु., वशिष्ठ, क. एवं सिंह, एम.के.- शैक्षिक प्रबंध और शिक्षा की समस्यायें
5. भट्टाचार्य, जे.सी.- अध्यापक शिक्षा
6. माथुर, सा., शर्मा, स. एवं सिन्हा, जे.सी.- शिक्षा के समाजशास्त्र आधार
7. शर्मा, आर.ए.- शिक्षा प्रशासन एवं प्रबंधन

इकाई 4. नेतृत्व

संरचना

4.1 शिक्षण उद्देश्य

4.2 प्रस्तावना

4.3 नेतृत्व का अर्थ

4.3.1 प्रभुत्व और नेतृत्व में अंतर

4.3.2. प्रशासन और नेतृत्व में अंतर

4.4 नेतृत्व की विशेषताएं

4.4.1 नेतृत्व के लिए आवश्यक गुण

4.5 शैक्षिक नेतृत्व का अर्थ

4.6 शैक्षिक नेतृत्व में बाधाएं

4.7 नेतृत्व की संभावनाएं

4.8 संगठन में संसाधनों का प्रबन्धन

4.9 शैक्षिक प्रशासन और प्रबंधन में समुदाय की सहभागिता

4.10 सारांश

4.11 अपनी प्रगति के लिए अपेक्षित उत्तर

4.12 सन्दर्भ पुस्तकें

4.1 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के उपरांत आप

1. नेतृत्व के अर्थ को समझ सकेंगे|
2. नेतृत्व, प्रभुत्व और प्रशासन जैसी अवधारणा में अंतर कर पाएंगे|
3. शैक्षिक नेतृत्व के अर्थ को समझ सकेंगे|
4. एक अच्छे नेतृत्व कर्ता में कौन से गुण और विशेषताएं होती हैं इसको जान पाएंगे|
5. नेतृत्वकर्ता को किन किन बाधाओं का भी सामना करना पड़ता है इससे भी अवगत हो पाएंगे|
6. किसी भी संस्था के प्रबंधन के बारे में भी समझ बनायेंगे
7. शैक्षिक प्रशासन और प्रबंधन में समुदाय की सहभागिता को जान पाएंगे|

4.2 प्रस्तावना

विद्यार्थियों पर कक्षा में होने वाले अध्यापन के बाद सबसे ज्यादा असर स्कूल के नेतृत्व का ही पड़ता है|कोई इस बात में शंका नहीं करेगा। इसलिए यह अजीब और निराशाजनक लगता है कि हमारे पास लाखों स्कूलों के लिए प्रमुखों को चुनने, उन्हें प्रशिक्षित करने, मार्गदर्शन देने और उनका निरन्तर विकास करने की कोई उचित व्यवस्था नहीं है। जब भी इस पर चर्चा होती है कि भारतीय शिक्षा में सुधार के लिए किन मुद्दों पर सबसे ज्यादा ध्यान दिए जाने की आवश्यकता है, तो स्कूल में नेतृत्व का मुद्दा बहुत ऊपर रहता है। जहाँ एक ओर शैक्षणिक सहयोग प्रदान करने वाली व्यवस्था को मजबूत बनाए जाने की बेहद जरूरत है तो दूसरी ओर उतनी ही जबरदस्त जरूरत हमारे स्कूलों और शैक्षणिक प्रशासन में नेतृत्व की गुणवत्ता को बढ़ाने की है। इस सम्बन्ध में शिक्षा-नीति निर्माताओं और प्रशासकों का कुछ ठोस संगठित कार्यवाही करना बहुत आवश्यक है।

4.3 नेतृत्व का अर्थ

मनुष्य में आत्म-प्रदर्शन की प्रवृत्ति मूल रूप में होती है| यही मूल प्रवृति शक्ति को जगाने में स्हायक होती है| वैसे तो मनुष्य के अतिरिक्त अन्य प्राणियों में भी प्रभुत्व की भावना रहती है| फ्रायड के मनोविश्लेषण के आधार पर 'अहं आदर्श' ही नेतृत्व का जन्म है, क्योंकि अहं अनुभूति होती है जो मानव को किसी कार्य के लिए प्रेरित करती है| जब इस अहं में जब कोई उद्देश्य अथवा आदर्श समाहित हो जाता है तो वह आदर्श कहलाने लगता है यही 'अहं आदर्श' मनुष्य को नेता बनने की निरंतर चेष्टा में तल्लीन रहने की प्रेरणा देता रहता है|

संस्कृत भाषा में नेता शब्द 'नीयते यः अनने' अर्थात जो दूसरों को ले जाने कि क्षमता रखे, अर्थ को प्रकट करता है| इसका तात्पर्य यही है कि जो व्यक्ति स्वयं आदर्श रूप होकर अन्य व्यक्तियों को आदर्श की ओर अग्रसर करता है, वही नेता हो सकता है| अंग्रेजी भाषा में Leader शब्द का अर्थ One who leads है| 'लीडर' शब्द भी 'नायक', 'मार्ग-प्रदर्शक', 'अगुआ तथा अग्रसर करने वाला' अर्थों को प्रकट करता है| इन शब्दों के शाब्दिक अर्थों को स्पष्ट करने का तात्पर्य यही है कि जो व्यक्ति अन्य व्यक्तियों को मार्ग दिखाने अथवा अगुआ होकर आदर्श व्यवहार करने की क्षमता रखता है, वही सचमुच नेता कहला सकता है|

'ला पियरे तथा फ्रैन्सवर्थ' ने अपनी पुस्तक 'सोशल साइकोलॉजी' में नेतृत्व के सम्बन्ध में लिखा है-

"नेतृत्व एक प्रकार का व्यवहार है जो नेता में ही पाया जाता है| यह व्यवहार अन्य व्यक्तियों के व्यवहार को अधिकतर प्रभावित करता है एवं नेता उनके व्यवहार से इतना अधिक प्रभावित नहीं होता|"

4.3.1 प्रभुत्व और नेतृत्व में अंतर

'प्रभुत्व' तथा 'नेतृत्व' में थोड़ा अंतर होता है| जहाँ किसी भी प्रकार शक्ति अथवा अधिकार प्राप्त करने का प्रयास किया जाता है, वहाँ प्रभुता होती है| स्वेच्छाचारिता, आतंक अथवा और भय दिखाकर भी प्रभुत्व प्राप्त किया जा सकता है| प्रभुत्व में स्वार्थपरता तथा संकीर्णता व्याप्त होती है परन्तु जहाँ व्यक्ति जनसमूह के हृदय पर अधिकार जमाकर परोपकार की भावना को व्यक्त करता है| निःस्वार्थ भावना के द्वारा ही नेतृत्व को प्राप्त किया जा सकता है| वास्तव में नेतृत्व की भावना के लिए परोपकार सेवा तथा कल्याण की भावना को रखना अत्यंत आवश्यक है| कहा जा सकता है कि प्रभुत्व की अपेक्षा नेतृत्व शब्द का प्रयोग कल्याणकारी तथा मानवतायुक्त भावनाओं के रूप में किया जाता है|

4.3.2 प्रशासन एवं नेतृत्व में अंतर

प्रशासन के अंतर्गत किन्हीं कार्यों को स्थिरतापूर्वक तथा कुशलतापूर्वक करने का प्रयास किया जाता है| परन्तु उस कार्य प्रणाली में अधिक परिवर्तन करने की इच्छा प्रकट नहीं की जाती इसके विपरीत नेतृत्व के अंतर्गत परिवर्तन को ही मुख्य कार्य समझा जाता है| जो परिवर्तन न कर सके उसे नेता ही नहीं कहा जा सकता है|

प्रशासन केवल किन्हीं कार्यों की सुरक्षा करने का ही माध्यम नहीं होता अपितु वह उत्तम प्रशासन के लिए परिवर्तन भी कर सकता है और वह एक नेता भी बन सकता है| इसी प्रकार एक नेता सदैव परिवर्तनकारी नही होता, वह अपनी परिवर्तन कि प्रवृत्ति को रोक भी सकता है| वास्तव में नेतृत्व के प्रत्यय में सदैव परिवर्तन होता रहा है|

अपनी प्रगति की जाँच करें

1. नेतृत्व के अर्थ को स्पष्ट कीजिए।

_____

2. नेतृत्व और प्रभुत्व में अंतर बताइए।

_____

3. नेतृत्व और प्रशासन में अंतर बताइए।

_____

4.4 नेतृत्व की विशेषताएं

मायर्स ने नेतृत्व पर शोध कार्य करते हुए नेतृत्व सम्बन्धी कुछ तथ्यों का निर्धारण किया है। ये तथ्य कुछ इस प्रकार हैं-

1. नेतृत्व अंतःक्रिया सम्बन्ध का ही परिणाम होता है, यह कोई स्तर अथवा स्थिति नहीं है।
2. नेतृत्व की सरंचना अग्रिम रूप से नहीं की जा सकती। उद्देश्यों, कार्यप्रणाली तथा शक्ति की विभिन्नता के कारण समाज में विभिन्न प्रकार के नेता विकसित हो सकते हैं।
3. किसी एक स्थिति में उत्पन्न नेता यानी स्थिति में स्वयमेव नेता नहीं हो सकता।
4. स्थिति अथवा स्तर के परिणामस्वरूप नेतृत्व नहीं रहता अपितु नेतृत्व तो व्यक्ति के संगठन में विशिष्ट व्यव्हार करने पर ही आश्रित होता है।
5. कोई व्यक्ति नेता है अथवा नहीं यह बात समूह के द्वारा उसे ग्रहण करने पर आश्रित होती है।
6. एक नेता अपनी भूमिका को जिस दृष्टि से देखता है उसी के अनुसार अपने कार्यों को भी निश्चित करता है।
7. अनेक समूहों में एक से अधिक व्यक्ति की भूमिका का निर्वाह करते हैं।
8. समूह के व्यक्तियों तथा कार्यों के प्रति नेता अनुकूल भावनाओं को रखता है।
9. नेतृत्व अधिकारिक अथवा प्रजातान्त्रिक तो हो सकता है परन्तु नेतृत्व तटस्थ भावयुक्त अथवा हस्तक्षेप रहित कदापि नहीं हो सकता।
10. किसी समूह के आदर्श की आलोचना किए जाने पर भी उनकी रक्षा नेतृत्व द्वारा ही की जाती है तथा समूह के स्तर को बनाये रखने का उत्तरदायित्व नेता पर ही होता है।
11. नेतृत्व समूह के व्यक्तियों के द्वारा दिया गया अधिकार है। यह अधिकार केवल उसी व्यक्ति को दिया जाता है जो समूह के द्वारा भली प्रकार आँका जाता है तथा जिसमें समूह की नेतृत्व भूमिका का निर्वाह करने की पूर्ण योग्यता होती है।

मायर्स के नेतृत्व सम्बन्धी उपरोक्त तथ्यों का अंतिम रूप से सामान्यीकरण तो नहीं हो सका तथापि नेतृत्व के लिए इन विशेषताओं को आवश्यक माना जा सकता है। इसमें कोई संदेह नहीं है कि जिस नेता में दूसरों को समायोजित तथा एकीकृत करने की शक्ति जितनी प्रबल होती है वह उतना ही योग्य नेता समझा जाता है। समूह की समस्याओं का निराकरण करने के लिए नेता में अधिक ज्ञान का होना आवश्यक है। इसके अतिरिक्त किसी कार्य में पहल करने की क्षमता, अंतर्दृष्टि, सहयोग, निर्णय लेने की क्षमता, भावनात्मक स्थिरता, निश्चित जीवन उद्देश्य, मौलिकता आदि गुण भी नेतृत्व से अधिक सम्बंधित होते हैं।

नेतृत्व की कुछ और निम्नलिखित विशेषताएं हैं जो कि निम्नलिखित हैं-

1. सेवा भावना की इच्छा
2. समस्याओं से अवगत होना
3. सर्जनात्मक योग्यता की अधिकता

4. अपराध निर्णय अथवा दोष सिद्धि का साहस
5. साहसिक उत्तरदायित्व निर्वाह
6. उद्देश्य तल्लीनता
7. उच्च बौद्धिक योग्यता
8. आत्म गौरव की अनुभूति तथा व्यक्तित्व आकर्षण
9. सामाजिक व्यवहार में प्रौढ़ता
10. भावात्मक स्थायित्व
11. सहयोग में विश्वास
12. आश्रितता के प्रति आस्था
13. उत्तरदायित्व तथा अधिकार सौंपने की इच्छुकता
14. नवीन विचारों को प्रकट करने तथा समस्या निराकरण की योग्यता
15. उद्देश्य-स्पष्टता, योजना-निर्माण तथा सक्रिय कार्यक्षमता
16. सहयोगात्मक कार्यों के निर्देशन की योग्यता
17. भाषण, लेखन सम्मेलन तथा सामाजिक उत्सवों के आयोजन की योग्यता
18. अधिकतम कार्य करने की क्षमता
19. नियमों तथा कानूनों का ज्ञान
20. व्यक्तियों के योग्यता की पहचान

4.4.1 नेतृत्व के लिए आवश्यक गुण

प्रभावशाली नेतृत्व की योग्यता को प्राप्त करने के लिए नेता में अनेक गुणों का होना अत्यंत अवश्यक है| नेतृत्व के कुछ निम्नलिखित गुण इस प्रकार हैं

1. बौद्धिक कुशाग्रता शक्तिःनेतृत्व के लिए बौद्धिक कुशाग्रता एक आवश्यक गुण समझा जाता है| बौद्धिक कुशाग्रता के अंतर्गत सूझ, व्यापक दृष्टि, चातुर्य, परिपक्व अनुभव, उच्च चिंतन आदि विशेषताओं की आवश्यकता होती है|

2. कल्पना: कल्पना के अंतर्गत पूर्व-चिंतन, दूरदर्शिता, व्यापक रुचि, मौलिकता, संतुलित अवधान, बौद्धिक एवं मानसिक धारणा शक्ति इत्यादि विशेषताएं सम्मिलित होती हैं|

3. आत्मनिर्भरता: इसके अंतर्गत आत्मविश्वास, उत्तरदायित्व निभाने की भावना, लक्ष्य एवं दिशा का ज्ञान, अंतिम निर्णय लेने की क्षमता, समयानुकूल स्वागत युक्तियों को अवलंबन लेने की प्रवृत्ति आदि विशेषताएं आत्मनिर्भरता का अंग हैं|

4. नैतिक जागरूकता:- नेतृत्व के इस गुण में स्पष्टवादिता, आदर्श निर्वाह, सत्यता, न्याय, नैतिक आचरणशीलता, गंभीर निर्णय, विस्तीर्ण मनोदशा, जन विश्वास, कार्य पवित्रता आदि विशेषताएं सम्मिलित होती हैं| इन सभी विशेषताओं से युक्त नेतृत्व उत्तम होता है|

5. संयम: नेतृत्व को प्रभावशाली बनाने के लिए संयम भी एक आवश्यक गुण है| संयम के अंतर्गत आत्म-संयम, आत्मानुभूति, आत्मानुशासन, आत्मनियंत्रण, दमन आदि विशेषताएं आती हैं|

6. उत्तरदायित्व निर्वाह: उत्तरदायित्व निर्वाह करने में स्वावलंबी, परिपक्वता, कर्त्तव्य-परायणता, उद्यमशीलता, तल्लीनता, कार्य-प्रेम, शालीनता, स्पष्टता, कर्म-पवित्रता, चरित्र-अनुशीलता आदि विशेषताओं का होना आवश्यक है|

7. आदर्श चरित्र और संतुलित स्वभाव: नेता के आदर्श चरित्र एवं स्थायित्व में संतुलन होने पर नेतृत्व निखरता है| धैर्य, स्वनिर्माण, आशावादिता, मानसिक ग्रंथि-विहीनता, स्वाभाविक प्रसन्नता, मानसिक संतुलन और मानसिक संतुष्टि, आत्मानुभूतिपूर्ण आदर्श व्यवहार, गंभीरता, सहनशीलता आदि विशेषताओं से नेता का चरित्र आदर्श एवं व्यवहार संतुलित बनता है|

8. प्रेरणा एवं संकल्प: नेतृत्व के लिए नेता में उत्साह, श्रम के प्रति गंभीरता, वाकपटुता, ओज, शौर्य, गत्यात्मकता यश की आकांक्षा, उद्देश्यों एवं प्रयोजन की एकलता आदि विशेषताएं होनी चाहिए|
9. जन-सम्पर्क एवं लोकप्रियता:सामाजिक आवश्यकताओं एवं आदर्शों का ज्ञान, सामाजिक परम्पराओं का अनुपालन, अंधविश्वास का सहानुभूतिपूर्ण एवं वैज्ञानिक निराकरण, प्रेम एवं सहयोग की भावना, सामाजिक उत्तरदायित्व ग्रहण करने में प्राथमिकता, सामाजिक व्यवहार आदि क्षमताएं नेता के जनसंपर्क को बढ़ाती हैं तथा उसे लोकप्रिय बनाती हैं|

अपनी प्रगति की जाँच करें

4. नेतृत्व की विशेषताएं बताइए|

_____

5. एक नेतृत्वकर्ता को कौन से आवश्यक गुणों की आवश्यकता होती है?

_____

4.5 शैक्षिक नेतृत्व का अर्थ

शैक्षिक प्रशासन के क्षेत्र में किसी विशिष्ट व्यक्ति का जनतांत्रिक युक्त तथा सहकर्मियों के हृदय को सर्वांगरूप में जीतने वाला व्यवहार जो वैयक्तिक तथा अर्जित गुणों पर आधारित होता है, शैक्षिक नेतृत्व कहा जाता है|

शैक्षिक नेतृत्व से परिपूर्ण, प्रशासन के कार्यों को उसी प्रकार करने में सक्षम होता है जैसा उस शैक्षिक समूह के व्यक्ति कराने की इच्छा रखते हैं| शैक्षिक नेतृत्व के अंतर्गत कार्यकुशलता, लोकप्रिय व्यवहार तथा सद्भावना आदि का बड़ा मूल्य होता है| शैक्षिक नेतृत्व में ऐसी शक्ति होती है जो अध्यापन की क्षमता में निसंदेह वृद्धि कर देती है|

4.6 शैक्षिक नेतृत्व में बाधाएं

आज स्कूल का नेतृत्व करने वालों की यह क्ह पृष्ठभूमि है जिसे आमतौर पर अभिव्यक्त नहीं किया जाता। ये स्कूल-नायक अक्सर नेतृत्व करने के लिए प्रशिक्षित नहीं होते बल्कि किन्हीं अन्य कार्यों के लिए योग्यता-प्राप्त होते हैं। इसी के चलते उनके द्वारा किए जाने वाले अधिकांश कार्य और गतिविधियाँ तदर्थ प्रकार की होती हैं। ठोस सिद्धान्तों का स्थान नारे ले लेते हैं और आजमाई गई पद्धतियों पर व्यक्तिगत धारणाएँ हावी हो जाती हैं। कार्यक्षेत्रों की सीमाएँ बँधी रहती हैं, और उनके बीच आदान-प्रदान की छूट नहीं रहती। सम्बन्धों का बनना-बनाना पदानुक्रम के तहत ही होता है और यथास्थिति का सख्ती से पालन किया जाता है। ये तरीके अव्यक्त लक्ष्यों और अस्पष्ट समग्र उद्देश्यों के साथ काम करने के भय से बचाव और सुरक्षा के तरीके हैं। बाहरी तौर पर एक व्यवस्था बनाए रखी जाती है, यद्यपि आन्तरिक कामकाज अव्यवस्थित रहता है। और इसलिए, मामूली बातें सबसे महत्वपूर्ण हो जाती हैं और वे ही एक पंगु व्यवस्था की बैसाखियाँ बन जाती हैं।

कुछ ऐसी बाधाएं हैं जो नेतृत्व को सफल नहीं होने देती| शैक्षिक नेता को समाज में रहकर ही कार्य करना पड़ता है| सामाजिक, राजनैतिक तथा विभागीय परिस्थितियों का उसे सामना करना पड़ता है| योग्य शैक्षिक नेता को भी कभी-कभी उन्हीं इच्छाओं का दमन करना पड़ता है, इसका कुप्रभाव नेता के व्यक्तित्व पर अवश्य होता है| वह निराश तथा अकर्मण्य बन जाता है कभी नियमों तथा कानूनों की शक्ति नेता की कार्य शक्ति को स्थिर कर देती है और वह यथा स्थिति में रहकर क्या करें, क्या न करें वाली स्थिति में आ जाता है| ऐसी बाधाएं जो शैक्षिक नेतृत्व पर दुष्प्रभाव डालती हैं निम्नलिखित हो सकती हैं-

1. शिक्षा विभाग के नियमों तथा कानूनों की प्रचुरता
2. राजनैतिक दबाव
3. शिक्षा विहीन व्यक्तियों का शिक्षण संस्थाओं पर नियंत्रण
4. धन की अपर्याप्तता तथा स्रोतों का आभाव
5. छात्रों तथा अध्यापकों की केवल अधिकारों के प्रति अधिक जागरूकता
6. संस्थागत ईर्ष्या

1. शिक्षा विभाग के नियमों तथा कानूनों की प्रचुरता: शैक्षिक नेता अपने वैयक्तिक गुणों के होते हुए भी पग-पग पर नियमों के बंधन में कभी-कभी शिथिल हो जाते हैं| इस प्रकार विद्यालय की उन्नति में भी बाधा उत्पन्न करता है| उसके आधीन शिक्षा सचिव, शिक्षा निदेशक, जिला विद्यालय निरीक्षक होते हैं| इन सभी शिक्षाधिकारियों के कार्यालयों से अनेक नियम, आदेश तथा निर्देश निकाले जाते हैं| इन नियमों का अंकुश शैक्षिक नेताओं पर सदैव लगा रहता है| शिक्षकों की नियुक्ति, अनुमोदन, सेवा कार्य, सेवा समाप्ति, छात्रों के प्रवेश, प्रमाण पत्र, परीक्षाफल आदि अनेक कार्यों में शैक्षिक नेता को विभागीय नियमों की ओर देखना पड़ता है| विभागीय आदेश कभी-कभी तो परीक्षा और शिक्षा की नीति में ऐसा परिवर्तन कर देते है जिससे सभी शिक्षण संस्थाओं का प्रशासन अस्त व्यस्त हो जाता है तथा शैक्षिक नेता को भी अनेक आपत्तियों का सामना करना पड़ता है|
2. राजनैतिक दबाव: भारत में राजनैतिक दबाव का प्रभाव शिक्षण संस्थाओं में अधिक देखा जाता है| नियुक्ति, स्थानांतरण, छात्र-प्रवेश, परीक्षाफल आदि सभी कार्यों में राजनैतिक नेताओं की सिफारिश कराने का सामान्य प्रचलन हो गया है| कर्मचारियों को कार्य शिथिलता, अनुशासनहीनता के कारण शैक्षिक नेता द्वारा यदि धमकी अथवा सजा दी जाती है तो उसे रोकने के लिए भी राजनेताओं की शरण ली जाती है| इन सभी बैटन का दुष्प्रभाव शिक्षण संस्थाओं की उन्नति में बाधक होता है|
3. शिक्षा विहीन व्यक्तियों का शिक्षण संस्थाओं पर नियंत्रण: समाज के अनेक धनवान, प्रभुता प्राप्त, धार्मिक एवं राजनीतिज्ञ शिक्षण संस्थाओं की स्थापना करते हैं| शैक्षिक नेताओं को इनके आदेश का पालन करना होता है| ऐसे व्यक्तियों के दुराग्रह, असंयमित व्यवहार तथा निरंकुश व्यवहार पर रोक लगाना शैक्षिक नेता के लिए अत्यंत कठिन कार्य बन जाता है| ऐसे में शिक्षण संस्थाओं को ऐसे व्यक्ति को प्रबंधक बनाना चाहिए जो अनुभवी, शिक्षित तथा समायोजन में विश्वास रखने वाला हो|
4. धन की अपर्याप्तता तथा स्रोतों का अभाव:कोई छोटी या बड़ी योजना धन के आभाव में पूरी नहीं हो सकती| विद्यालय में अच्छा पुस्तकालय, प्रयोगशाला, खेल मैदान, कक्षा भवन होना आवश्यक होता है| शिक्षा की योजनाओं पर पर्याप्त धन व्यय होना चाहिए| स्थानीय स्रोतों से विद्यालय की आर्थिक आवश्यकता की पूर्ति किये जाने पर शैक्षिक नेता को कार्य करने में सुगमता होती है अतः हम देखते हैं कि धन की अपर्याप्तता भी शैक्षिक नेतृत्व के मार्ग में बाधा बन जाती है|
5. छात्रों और अध्यापकों की केवल अधिकारों के प्रति अधिक जागरूकता: शैक्षिक नेता का छात्रों तथा अध्यापकों से सीधा सम्बन्ध होता है| यदि सभी व्यक्ति अधिकारों के साथ कर्त्तव्यों का भी उचित रूप से पालन करते रहें तो समाज अथवा किसी भी संस्था में संघर्ष एवं टकराव की स्थिति नहीं आ सकती| ऐसा भी देखने में आता है कि विद्यालय में कतिपय अध्यापकों का मुख्य उद्देश्य पढ़ाना नहीं अपितु पग-पग पर शैक्षिक नेता का विरोध करना होता है| शैक्षिक नेता अथवा प्रधानाचार्य के कर्त्तव्यों में निरीक्षण एवं पर्यवेक्षण भी सम्मिलित है| कर्त्तव्य के प्रति

शिथिल होने वाले शिक्षकों को टोकने पर उनका शैक्षिक नेता के साथ छात्रों तथा अध्यापकों का पूर्ण सहयोग अपेक्षित है|

6. संस्थागत ईर्ष्या:- हम देखते हैं कि एक संस्था दूसरी संस्था को बाधा पहुँचाने का प्रयास करती है| विद्यालयों में शैक्षिक नेताओं को निरंतर विरोधों का सामना करना पड़ता है| एक संस्था का उद्देश्य दूसरी संस्था की बुराई करना, छात्रों तथा संरक्षकों को प्रवेश के लिए बहकाना, परीक्षा परिणाम अनुशासन आदि की आलोचना करना बन जाता है| ये सभी कार्य अनुचित तथा अशोभनीय होते हैं| कभी-कभी एक संस्था की उत्तम बातों की भी निंदा तथा भर्त्सना की जाती है जिससे ईर्ष्या की भावना स्पष्ट प्रकट हो जाती है| इसी प्रकार कुछ व्यक्ति जन्म से ही दूसरों के गुणों के प्रशंसक न होकर निन्दक ही होते हैं| संस्थागत ईर्ष्या के मूल में व्यक्ति का ईर्ष्यालु स्वभाव ही हुआ करता है| इस स्वभाव को बुद्धिमान तथा श्रेष्ठ व्यक्ति अपने मन में भी अंकुरित नहीं होने देते|

4.7 नेतृत्व की संभावनाएं

शिक्षा व्यवस्था में नायकों को विकसित करने की तीव्र आवश्यकता का अहसास होना जरूरी है। सौभाग्य से, ऐसे लोगों में से अनेक के पास अपने जीवन-अनुभवों से हासिल कुछ कौशल होते हैं, पर उन्हें बस थोड़े से अतिरिक्त सहारे की जरूरत होती है, ताकि वे ऐसे नेता बन सकें, जो अहंकारी और केवल अपने बारे में सोचने वाले न होकर, आगे आने में और नेता बनने में दूसरों की मदद कर सकें।

क्या स्कूल-प्रमुख ऐसे योद्धा हो सकते हैं जो कन्धे से कन्धा मिलाकर इस लड़ाई में शिक्षक के साथ खड़े हों? उन्हें प्राथमिक स्कूल में काम करने का अनुभव है या नहीं, इसे मुद्दा बनाना जरूरी नहीं है; महत्वपूर्ण यह है कि क्या वे कक्षा के मैदान में हो रहे काम में मददगार हो सकते हैं?

क्या यह सम्भव नहीं है कि नेतृत्व एक शिक्षक की तकलीफों और परेशानियों को सहृदयता से सुने? व्यवस्था में शिक्षकों की बात सुनने वाले किसी ऐसे व्यक्ति के अभाव में, जिसके आगे वे अपनी चिन्ताएँ और आशंकाएँ व्यक्त कर सकें, जब वहाँ कोई 'बाहर का' व्यक्ति पहुँचता है तो वे अक्सर उसे ही अपनी हताशा भरी व्यथा सुनाने लगते हैं। हो सकता है कि स्कूल-प्रमुख के पास उन्हें देने के लिए कोई सलाह या उत्तर न हो, पर क्या वह शिक्षकों को समय और सुविधा देकर उनकी समस्याएँ नहीं बाँट सकता, जिससे बहुत सम्भव है कि वे स्वयं अपने हल ढूढ निकालें?

क्या स्कूल-प्रमुख ऐसा संगठनकर्ता या गड़रिया नहीं हो सकता जो स्कूल व्यवस्था के समग्र उद्देश्य को हासिल करने के मकसद से अपने अधीनस्थ लोगों के लिए आवश्यक शैक्षणिक पोषण और सहयोग का प्रबन्ध कर सके?

क्या नेतृत्व किसी शिक्षक को कक्षा का राजा या रानी होने की शक्ति का उचित उपयोग करने के काबिल नहीं बना सकता?- बच्चों पर अहसान करने के लिए नहीं, बल्कि देश के लक्ष्यों के अनुरूप लोकतान्त्रिक संस्कृति विकसित करने के लिए।

क्या शिक्षक स्कूल-प्रमुख से कहेगा, कृपया मुझे मार्ग दिखाओ - मुझे सुदूर को देखने की कामना नहीं है मेरे लिए बस एक कदम ही काफी है।या क्या शिक्षक यह कहना पसन्द करेगा, ऐसा मार्ग दिखाओ जो मन और मस्तिष्क को हमेशा विस्तृत होते विचार और कार्य की ओर ले जाता हो।

क्या शिक्षक को एक साधारण सिपाही की तरह कदम-कदम पर बस वैसा करना है जैसा उससे कहा जाता है, या शिक्षा में नेतृत्व देने वालों द्वारा उसके काम की विराटता और गहराई को उसके लिए इस रूप में खोला जा सकता है कि वह समर्थ और सशक्त बन पाए?

अपनी प्रगति की जाँच करें

6. शैक्षिक नेतृत्व के अर्थ को स्पष्ट कीजिए|

_____

7. नेतृत्व में आने वाली बाधाओं तथा संभावनाओं को स्पष्ट कीजिए|

_____

4.8 संगठन में संसाधनों का प्रबन्धन

1.भौतिक संसाधन

2.मानव संसाधन

3.वित्तीय संसाधन व बजट प्रबन्धन

किसी भी संगठन या संस्था में यदि संसाधनों का प्रबंधन ठीक ढंग से नहीं किया जाता है तो वह संस्था कमजोर होने लगती है| उदहारण के लिए मान लीजिए स्कूल जैसी संस्था में संसाधनों का उचित ढंग से उपयोग नहीं किया जाता है तो उसके दुष्प्रभाव हमें दिखाई पड़ते हैं| दुष्प्रभाव जैसे सीखने-सिखाने की प्रक्रिया में लगातार विद्यार्थियों की रुचि का कम हो जाना, स्कूल का परिणाम प्रभावित होना, शिक्षा की गुणवत्ता का प्रभावित होना इत्यादि रूप में दिखाई पड़ता है| इसी के साथ किसी भी संस्था के संसाधनों के प्रबंधन में निम्नलिखित क्षेत्रों में उसके प्रबंधन को देख सकते हैं जो कुछ इस प्रकार हैं-

1. भौतिक संसाधन: किसी भी स्कूल जैसी संस्था को चलाने के लिए निम्नलिखित भौतिक संसाधनों की आवश्यकता पड़ती है जैसे- भवन, प्रयोगशाला, पुस्तकालय, खेल का मैदान, डेस्क-बेंच इत्यादि| इसके आलावा और बहुत से संसाधनों की आवश्यकता पड़ती है जिसके बिना स्कूल को चलाना आसान कार्य नहीं है| उदहारण के लिए यदि पुस्तकालय में पुस्तकों को मगवाना है तो कब मंगाना है और कौन कौन सी पत्रिकाएँ मंगाना है इसका निर्णय नेतृत्वकर्ता को लेना होता है और साथ ही साथ इसका प्रबंधन भी करना होता है|
2. मानव संसाधन: स्कूल में कितने शिक्षक होंगे और कितने गैर शिक्षक होंगे इसका निर्णय स्कूल प्रमुख को लेना होता है तथा साथ ही साथ उन शिक्षकों का किस ढंग से उपयोग किया जाय जिससे स्कूल को अपने कार्यों में सफलता मिले इसका भी निर्णय स्कूल प्रमुख को लेना पड़ता है| इसके अतिरिक्त शिक्षकों व गैर-शिक्षकों को स्कूल की कौन सी गतिविधियों में संलिप्त करना है, इसका भी निर्णय स्कूल प्रमुख को लेना पड़ता है| स्कूल प्रमुख को अपने स्टाफ से संवाद को बनाये रखना चाहिए जिससे कि आपस सद्भाव बना रहे तथा कार्य की प्रगति होती रहे|
3. वित्तीय संसाधन व बजट प्रबंधन: किसी भी सरकारी स्कूल को अपने बजट के प्रबंधन के लिए राज्य के ऊपर निर्भर रहना पड़ता है| राज्य किस प्रकार अपने स्कूल के लिए बजट की मांग करती है इसका भी निर्णय स्कूल प्रमुख को लेना पड़ता है| स्कूल प्रमुख के ऊपर यह दायित्व बनता है कि वह जो भी बजट मिलता है उसका सही रूप से आवंटन करे तथा उसका इस प्रकार उपयोग करे जिससे कि उस स्कूल का कल्याण हो सके| यह भी बजट बनाये की प्राप्त मद को किन-किन क्षेत्रों में खर्च करें जिससे स्कूल की गुणवत्ता को सुधारा जा सके तथा उसे बनाये रखा जा सके|

4.9 शैक्षिक प्रशासन और प्रबंधन में समुदाय की सहभागिता

यह सच है कि हममें से प्रत्येक के भीतर नेतृत्व के गुण छिपे रहते हैं और वे तब ही उजागर होते हैं जब परिस्थिति इस की माँग करती है।स्कूल-नेतृत्व तभी प्रभावी होता है जब उसके साथ स्थानीय स्तर पर एक बेहतर 'सामुदायिक भागीदारी' भी हो। इसलिए, एक मजबूत साझेदारी बेहद महत्वपूर्ण है। यह 'स्कूल और समुदाय के रिश्ते' को मजबूत बनाकर और बाद में दोनों के बीच सम्प्रेषण और संवाद का एक मजबूत ताना-बाना स्थापित करके किया जा सकता है। 'स्कूल नेतृत्व को स्कूल तथा समुदाय के रिश्ते के उपफल की तरह नहीं देखा जा सकता, बल्कि उसकी कल्पना सम्प्रेषण और संवाद के अभिनव औजारों के 'पूरक प्रभाव' के रूप में की जा सकती है।

विभिन्न अध्ययनों से यह तथ्य निकलकर सामने आया है कि समुदाय की भरपूर सहायता और सहयोग मिलने पर ही प्रधान-शिक्षक द्वारा समुदाय को स्वीकार्य अच्छा नेतृत्व प्रदान किया जा सकता है।विभाग के नियम और प्रक्रियाएँ स्कूल के प्रशासन से सम्बन्धित निर्णय लेने में अक्सर शिक्षकों के आड़े आते हैं। स्कूल के संचालन की प्रक्रियाओं में समुदायों को सक्रिय रूप से शामिल करके शिक्षकों को पीछे से सहारा प्रदान किया जा सकता है

स्थानीय समुदाय यदि आगे बढ़कर स्कूलों के लिए आवश्यक अतिरिक्त संसाधन जुटाने का सक्रिय प्रयास करते हैं; तो वे अपने बच्चों की पढ़ाई की निगरानी करने, मध्यान्ह भोजन कार्यक्रम चलाने, स्कूल के मूलभूत ढाँचे का संरक्षण करने, और स्कूल के विकास के लिए वित्तीय राशियाँ जुटाने में मदद करने का कार्य कर रहे होते हैं। जब युवा और सामुदायिक संगठन भी स्कूलों में बेहतर गुणवत्ता की शिक्षा प्रदान करने के लिए शिक्षकों के साथ हो जाते हैं इससे सीखने सिखाने को बढ़ावा मिलता है|

आदर्श स्कूल-समुदाय का नेतृत्वकर्त्ता वह व्यक्ति होगा जिसमें कुछ निम्नलिखित गुण विद्यमान हों

1. स्कूल के भवन को एक बृहत्तर सामुदायिक ढाँचे के बीच एक बसेरे की तरह बना हुआ देखता हो।
2. समुदाय की आवश्यकताओं की फिक्र करता हो और समुदाय उसकी आवश्यकताओं की।
3. इन्द्रधनुषी भागीदारों, जैसे पालकों, शिक्षकों, बच्चों, एस.डी.एमसी. सदस्यों, सामुदायिक संगठनों के सदस्यों, ग्राम पंचायतों के सदस्यों और शिक्षा-प्रशासकों के साथ गुणवत्तापूर्ण सार्थक समय बिताना बेहद पसन्द करता हो।
4. समुदाय के सदस्यों को सक्रिय तौर पर शामिल करते हुए स्कूल की गतिविधियों की योजना बनाए और उसे कार्यान्वित करे।
5. शैक्षणिक और गैर-शैक्षणिक गतिविधियों से सम्बन्धित स्कूल सुधारों के बारे में अपने विचार दूसरों के साथ बाँटे और संसाधन जुटाने की प्रक्रिया में पालकों के अलावा समुदाय के अन्य लोगों का भी सहयोग हासिल करे।

जब शिक्षक बृहद समुदाय की माँगों पर ध्यान देते हैं और उनके समाधान का प्रयास करते हैं, तो समुदाय भी शिक्षकों द्वारा स्कूल का नेतृत्व किए जाने को स्वीकारता है और उसमें सहयोग करता है। समुदाय शिक्षकों के गैर-शैक्षणिक कार्यों की जिम्मेदारी में हाथ बँटाने के लिए आम तौर पर तैयार रहता है; शिक्षकों को इसका लाभ उठाना चाहिए क्योंकि इससे उन्हें अपनी शैक्षणिक जिम्मेदारियाँ पूरी करने के लिए अधिक समय मिलेगा। स्कूल नेतृत्व की ऐसी अवधारणा स्कूल के विकास के साझा उद्देश्य के लिए साझा जिम्मेदारी की ओर इशारा करती है। जब साझा नेतृत्व समूचे स्कूली समुदाय में जड़बद्ध होता है तो उसके लम्बे समय तक सामाजिक रूप से बने रहने की गुंजाइश बहुत बढ़ जाती है।

अपनी प्रगति की जाँच करें

8. किसी भी संस्था में संसाधनों का प्रबंधन किस प्रकार किया जा सकता है?

   _____

9. शैक्षिक प्रशासन और प्रबंधन में समुदाय किस प्रकार अपनी सहभागिता को सुनिश्चित करता है?|

   _____

4.10 सारांश

नेतृत्व शैक्षिक संगठनों एवं विद्यालयों के सफल संचालन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। अतः किसी विद्यालय के प्रशासक में नेतृत्व सम्बन्धी गुणों की उपस्थिति आवश्यक है। परन्तु प्रधानाध्यापक को विद्यालय संगठन की व्यवस्था को सुचारू रूप से चलाने के लिए निरंकुश न होते हुए लोकतान्त्रिक शैली का अनुसरण करना चाहिए तथा समुदाय का भी सहयोग सुनिश्चित करना चाहिए।

4.11 अपनी प्रगति की जाँच के लिए अपेक्षित उत्तर

1. 4.3 नेतृत्व का अर्थ
2. 4.3.1 प्रभुत्व और नेतृत्व में अंतर
3. 4.3.2 प्रशासन एवं नेतृत्व में अंतर
4. 4.4 नेतृत्व की विशेषताएं
5. 4.4.1 नेतृत्व के लिए आवश्यक गुण
6. 4.5 शैक्षिक नेतृत्व का अर्थ
7. 4.6 शैक्षिक नेतृत्व में बाधाएं एवं 4.7 शैक्षिक नेतृत्व में संभावनाएं
8. 4.8 संगठन में संसाधनों का प्रबन्धन
9. 4.9 शैक्षिक प्रशासन और प्रबंधन में समुदाय की सहभागिता

4.12 सन्दर्भ पुस्तकें

1. कुमार, सतीश- विद्यालय प्रशासन एवं संगठन
2. कुशवाह, पु एवं सक्सेना, क.- शैक्षिक प्रबंधन एवं विद्यालय संगठन
3. तरुण, हरिवंश- मानक शिक्षा दर्शन एवं शैक्षिक समाजशास्त्र
4. भटनागर, सु., वशिष्ठ, क. एवं सिंह, एम.के.- शैक्षिक प्रबंध और शिक्षा की समस्याएँ
5. भट्टाचार्य, जे.सी.- अध्यापक शिक्षा
6. माथुर, सा., शर्मा, स. एवं सिन्हा, जे.सी.- शिक्षा के समाजशास्त्र आधार
7. शर्मा, आर.ए.- शिक्षा प्रशासन एवं प्रबंधन